सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र, सन्त निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड्कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश प्रसाद मौलवी फाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र नाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश वर्मा, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्या-सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

कहानी-संग्रह

रूसी कहानी-संग्रह

रूसी लेखकों-द्वारा लिखित मानव-जीवन की हृदय-विदारक वास्तविकता और वेदना की सर्वोत्तम कहानियों का संकलन !

कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा, बी० ए०

सरस्वती-सिरीज़ नं० २

रूसी कहानी-संग्रह

कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा, बी० ए०



प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

Printed and published by K. Mittra,
at the Indian Press, Ltd., Allahabad

भूमिका

प्रपीड़ित मानव-जीवन की हृदय-विदारक वास्तविकता और वेदना की सर्वोत्तम कहानियाँ प्रचुर मात्रा में यदि संसार में कहीं मिल सकती हैं, तो केवल रूस में ही। विश्वविख्यात रूसी लेखकों की सर्वप्रसिद्ध ग्यारह कहानियों का संकलन मैंने इस पुस्तक में किया है।

हिंदी के पाठकों के लिए रूसी साहित्य विशेष महत्त्व रखता है: कारण कि रूसी जीवन और भारतीय जीवन में बहुत कुछ समानता है, अंतर और बाह्य दोनों में ही। जरासिम, वानका, सेमीयोन, मूज्हीक और अकिजयोनोव आपको भी पग-पग पर अपने जीवन में मिलेंगे। भारतीय और रूसी अभिजात्य वर्गों में कुछ आंशिक विभिन्नता हो सकती है, किंतु दोनों देशों के मध्य तथा निम्न वर्गों में अद्भुत साम्य है। इस कारण जहाँ आपको अँगरेजी, फ्रांसीसी अथवा अन्य किसी विदेशीय जीवन की कहानियों में अभिव्यक्त जीवन को समझने में कुछ कठिनाई होती है, वहाँ रूसी जीवन की कहानियाँ समझने में नहीं।

रूसी कहानी-साहित्य का अपना एक छोटा-सा किंतु विशाल इतिहास है, जिसका जानना पाठक के लिए आवश्यक है।

सन् १८३४ ई० में पुश्किन (१७९९-१८३७) की 'हुकुम की मेम' और गोगल (१८०९-१८५२) की 'लबादा' नामक दो कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। ये कहानियाँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं, इसलिए इस संग्रह में नहीं दी जा सकीं; दूसरे इनका महत्त्व ऐतिहासिक अधिक है और कलात्मक कम। 'हुकुम की मेम' रोमैंटिक युग की

शैली[१] की बुझती हुई तीव्र ज्योति मात्र है, किंतु पुश्किन की कवित्वपूर्ण गद्य-शैली का सर्वोत्तम नमूना। 'लबादा' रूसी साहित्य में एक नवीन धारा की जन्मदात्री है—वह धारा जिसका विकसित रूप आज 'रूसी शैली' कहलाता है, जिसमें रूसी जीवन की वास्तविकता प्रतिबिम्बित है अपनी समस्त सरलता और स्वाभाविकता के साथ; और सरलता तथा स्वाभाविकता ही तो रूसी साहित्य के प्राण हैं! पुश्किन की 'हुकुम की मेम' किसी साहित्य की कहानी हो सकती है, किंतु गोगल की 'लबादा' केवल रूस और रूसी साहित्य की ही। एक रूसी समालोचक का कहना है—"हम सब, रूसी लेखक, गोगल के 'लबादे' में से ही निकले हैं।"

इस संकलन में तुर्गनेव, डास्टोएवस्की, टाल्स्टाय, साल्टीकोव, गार्शिन, चेख़व, सोलोगब, सेमीयोनोव, गोर्की और आर्टज़ियाबाशेव की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ संगृहीत हैं। लेखकों का क्रम समयानुसार न रख कर, मैंने उनकी संकलित रचनाओं की अपेक्षाकृत श्रेष्ठता के ध्यान से रखा है। फिर भी मेरा निर्णय अंतिम नहीं है और न सबके लिए मान्य ही; उससे केवल मेरी रुचि ही विदित होती है।

सोलोगब (१८६३-१९२७) की "ता! ता!" इस संग्रह की सबसे पहली कहानी है। यह कहानी केवल रूसी ही नहीं है, यह सार्वदेशिक है। सेराफ़िमा अलैग्ज़ैंड्रोवना के रूप में विश्व की पूजनीय शक्ति नारी के मातृ-रूप की जैसे "ता! ता!" प्रतिनिधि है। सेराफ़िमा जैसी स्नेही मा और लीलेश्का जैसी प्यारी बच्ची किसी देश में, किसी काल में, हो सकती हैं; होती ही हैं। यह विश्व-व्यापकता ही इस कहानी की सर्वोत्तम श्रेष्ठता है, और

१—रोमैंटिक युग की शैली का अभिप्राय रूसी साहित्य की उस अवस्था विशेष से है, जिसमें प्रेम, वीरता, प्रपञ्च और शौर्य के रोमांचकारी कार्यों का ही वर्णन रहता था।

इसी कारण यह कहानी विश्व-साहित्य की एक निधि है, फिर भी यह कहानी वास्तव में रूसी है, अपनी स्वाभाविक सरल शैली के कारण। कला, रहस्य और नितात सौंदर्य-मात्र की प्रतिमाओ के अनन्य उपासको में फ़ियोडोर सोलोगब का स्थान रूसी साहित्य मे सर्वोच्च है।

इसके बाद हे चेख़व की 'वानका' और 'शर्त'। शेक्सपियर का जो स्थान नाटक-साहित्य मे है, वही स्थान विश्व के कहानी-साहित्य मे चेख़व का है। यदि विश्व का केवल एक सर्वश्रेष्ठ कहानीकार पूछा जाय, तो शायद चेख़व को छोड़कर किसी दूसरे का नाम लेना सभव नहीं होगा। यूक्रेन के तगानारोख नामक स्थान में चेख़व का जन्म एक कृषककुल में १८६० ई० मे हुआ था। डाक्टरी की शिक्षा पाने के बाद चेख़व ने साहित्य को अपना लिया। किंतु उसने स्वीकार किया है कि उसे अपने चिकित्सा-विज्ञान से साहित्यिक रचना करने में बहुत सहायता मिली। केवल ४४ वर्ष की अल्पायु में तपेदिक़ की बीमारी से इस महान् कलाकार की १९०४ ई० मे मृत्यु हो गई। किन्तु इतने कम समय में ही उसने सैकड़ो कहानियाँ तथा कुछ नाटक भी लिख लिये थे। चेख़व की शैली अत्यन्त साफ-सुथरी और सीधी है। वास्तविक यथार्थता के अत्यंत निकट रहकर वह पूरी-पूरी सचाई के साथ अपने पात्रों का चित्रण करता है। कल्पना से वह उनमें रंगीनी नहीं भरता; उनमें काँट-छाँट नही करता; उन्हें घटाता-बढ़ाता नहीं; उनके 'कार्टून' नहीं बनाता, वह उन्हें जैसा-का-तैसा यथार्थ और सतुलित रूप में सजीव चित्रित कर देता है। चेख़व के पात्रों में आपको उसके व्यक्तित्व की छाया नहीं मिलेगी: उसके सिद्धात, उसके विचार, उसकी रुचि-अरुचि नहीं मिलेगी, फिर भी आप प्रतिपल अपने साथ ही

चेखव को हँसते, रोते, बातचीत करते और सोचते-विचारते पायेंगे। चेखव की शैली के ये महान् गुण हैं। इनके अतिरिक्त चेखव की कहानियो में जीवन की सम्पूर्ण विविधता आपको मिलेगी; उनमें किसी भी प्रकार की पुनरुक्ति नहीं है; एकरसता नही है। उसकी प्रत्येक कहानी एक दूसरे से भिन्न है, सर्वथा भिन्न! न पात्रो मे, न घटनाओं में, न शैली मे—कहीं कोई समानता नही मिलती; यदि उनमे कोई समानता है, तो वह है कला के प्राणों की, जिस प्रकार ईश्वरकृत मानव शरीर एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी समानरूप प्राण से युक्त होते हैं। यही है चेखव की कला का सबसे बड़ा गुण, जो विश्व के अन्य किसी कलाकार में नहीं मिलता। 'वानका' और 'शर्त' दोनो ही चेखव की कहानी-कला के इन विशिष्ट गुणो की परिचायक हैं।

आर्टजियाबाशेव (१८७२-१९१६) की 'क्रांतिकारी' कहानी-कला का एक पूर्ण नमूना है। वर्णन-शैली की इतनी अधिक स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता, बिना कोई काल्पनिक रंगीनी लिये, रूसी साहित्य मे शायद ही कहीं अन्यत्र देखने को मिले। 'क्रातिकारी' मे घटनाओं का सीधा-सादा सिलसिलेवार वर्णन है। फिर भी पाठक की उत्सुकता और कौतूहल कहीं शिथिल नहीं होते, क्षण भर को भी बहकते नही। लालक्रांति से पहले रूस की दलित मानवता का 'क्रांतिकारी' अत्यंत सजीव चित्रण है।

मैक्सिम गोर्की (१८६८-१९३६) रूसी-साहित्य का ही नहीं, विश्व-साहित्य का श्रेष्ठ उपन्यासकार है। उसका 'मा' उपन्यास रूस के श्रमजीवी वर्ग का स्वच्छ प्रतिबिम्ब है, उसका चीत्कार है, उसका आर्त्तनाद है! गोर्की की कला लालक्राति को उत्पन्न करनेवाली एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है,—उसका साहित्य रूसी जीवन में उन्नति के लिए उथल-पुथल कर देनेवाला एक भूकम्प है।

गोर्की के कलाकार में जैसे युगों से अत्याचार और यातनाओं से प्रपीड़ित रूसी जनता मूर्तिमती होकर चीख पड़ी है। रूसी जनता का वह जैसे साहित्यिक प्रतिनिधि है; उसका दुलारा, आँखो का तारा। गोर्की की शैली में तुर्गनेव की-सी शालीनता नही है, सोलोगब की-सी महीन कारीगरी नही है, टाल्स्टाय की दार्शनिकता नही है; उसमें है लोहार के हथौड़े की-सी भारी चोट, जो लोहे को कूटकर बना देती है। 'उसका प्रेमी' रूसी होते हुए भी एक ऐसी कहानी है, जिसमें समस्त असहाय, असुंदर और उपेक्षित मानवता के लिए सहानुभूति के आँसू ढुलक पड़े हैं!

गार्शिन (१८५५-१८८८) की 'लाल-झंडी' विश्व के कहानी-साहित्य की एक प्रसिद्ध रचना है। सेमीयोन के रूप मे एक पवित्र भोली-भाली आत्मा का प्रदर्शन है। छल-छद्म से हीन, भाग्य और ईश्वर मे विश्वास करनेवाले अशिक्षित और ईमानदार व्यक्ति संसार मे अनेक हैं और वे अनजाने ही ऐसे अनेक त्याग करते हैं, जिनसे अनेक का भला होता है।

डोस्टोएवस्की (१८२२-१८८१) रूस का एक श्रेष्ठ उपन्यासकार है। समस्त प्रपीड़ित मानवता के लिए करुणा और सहानुभूति से उसका हृदय आकुल भरा हुआ है। मानव-मनोविज्ञान में उसकी सूझ गहरी और सूक्ष्म है। मानव-जीवन की कुरूपता और विचित्रता का वह विशेष रूप से अध्ययन करता था। अपनी कहानियों में उसने हृदयविदारक दरिद्रता, अन्याय, अत्याचार और पीड़ा का चित्रण करने में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है। विश्व-बधुत्व और विश्व-प्रेम उसके आदर्श हैं। 'बड़ा दिन और विवाह' डोस्टोएवस्की की उत्कृष्ट कला का एक सुदर नमूना है।

'मृत्यु-शय्या पर शादी' तुर्गनेव (१८१८-१८८३) की सर्व-

प्रसिद्ध कहानी है । और इसके बाद है टाल्स्टाय (१८२८-१९१०) की एक श्रेष्ठ रचना 'ईश्वर का न्याय'। तुर्गनेव और टाल्स्टाय दोनों ही सुधारवादी थे। मानवजाति की भलाई के लिए वे सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करते थे। दोनो ही सुधारवादी और विचारक पहले थे, और कलाकार पीछे। किन्तु तुर्गनेव, फिर भी, शैलीकार भी था। टाल्स्टाय के लिए शैली कम महत्त्व रखती थी; वे अपनी बात को सीधे वैज्ञानिक ढंग से कह देना पसंद करते थे। टाल्स्टाय और तुर्गनेव के साहित्य ने रूस की अनेक सामाजिक और राजनैतिक कुरीतियों की जड़ काटी है, और व्यापकरूप में संसार के सभी देशों पर अपना प्रभाव डाला है। तुर्गनेव का कहना है—"टाल्स्टाय रूस का सर्वश्रेष्ठ लेखक है।" सुविख्यात फ्रैंच कलाकार फ्लाबेयर ने कहा है, "दूसरा शेक्सपियर"। किन्तु शेक्सपियर केवल कलाकार था, टाल्स्टाय महात्मा भी। विलियम डीन हौवेल ने कहा है—"मैं टाल्स्टाय की तुलना किसी से नही कर सकता। वे इससे परे हैं!" 'अन्ना कैरीनिना' टाल्स्टाय की वह कला-कृति है, जो आज विश्व-साहित्य की विभूति समझी जाती है।

'नौकर' के लेखक सेमीयोनोव का रूसी-साहित्य मे अपना अन्यतम स्थान है। सेमीयोनोव कृषक था और जब उसने अपनी प्रथम कहानी लिखी थी, तब उसे अच्छी तरह लिखना भी नहीं आता था। किन्तु वह कहानी टाल्स्टाय को पसद आई और उन्होंने सेमीयोनोव को प्रोत्साहित किया। सेमीयोनोव की कहानियाँ ग्राम्य-जीवन के चित्र हैं, जिनमे कला न होते हुए भी ऐसी सजीवता और सरलता है कि रूसी कलाकार भी आश्चर्य करते हैं!

अंतिम कहानी है साल्टीकोव (१८२६-१८८९) की 'अफसरो

की दावत'। साल्टीकोव तुर्गनेव और डोस्टोएवस्की का समकालीन है। वह अपने उपनाम 'शत्रद्रिन' से लिखा करता था। अपने समय का वह सबसे बड़ा व्यग्यकार था। प्रस्तुत कहानी में हास्य और व्यंग्य का अद्भुत सम्मिश्रण है।

संसार में रूसी जनता ही सबसे अधिक अपने साहित्य से प्रभावित होती है, और उसे गभीरतापूर्वक समझती है। उसके लिए साहित्य केवल मनोरंजन नहीं है। साहित्य से वह कुछ सीखना चाहती है; उसे अपने जीवन के निकट से निकट देखना चाहती है; कोरी कला उसे पसन्द नहीं है; फिर भी सुधारवाद की वेदी पर वह कला की हत्या नहीं चाहती। अपने श्रेष्ठ लेखकों को वह श्रेष्ठ विचारक के रूप मे भी देखना चाहती है। "मानवीय आदर्शों और जीवन के प्रति सचाई—रूसी साहित्य की अद्भुत सरलता और स्वाभाविकता के ये ही दो रहस्य हैं"—जैसा कि टामस सेल्ज़र ने लिखा है।

जीवन की सूक्ष्मतम और सरलतम अभिव्यक्ति के इन ग्यारह कलापूर्ण चित्रो मे जीवन-सरिता की करुण गति और मधुर संगीत है। यदि पाठक इनका हृदय से स्वागत कर अपनायेंगे, तो भविष्य में रूसी कहानी-कला की अन्य निधियाँ भी उनके सम्मुख आयेंगी। इन कहानियों में न केवल रूस की, वरन् समस्त मानवता की वेदना प्रतिध्वनित है।

—कांतिचन्द्र सौनरिक्सा

सूची

"ता–ता !"

फ़ियोडोर सोलोगब

लीलेश्का बड़ी प्यारी बच्ची थी। ऐसी प्यारी बच्ची कोई दूसरी नहीं थी, न पहले कभी थी और न कभी होगी ही—लीलेश्का की मा सेराफिमा अलैग्ज़ैंड्रोवना को यह पूरा विश्वास था। उसकी मीठी-मीठी आवाज़ अलैग्ज़ैंड्रा को न जाने कितनी प्यारी लगती थी! लीलेश की आँखे बड़ी-बड़ी और काली-काली थीं। उसके गाल गुलाब-से खिले हुए थे। लीलेश के वे पतले-पतले लाल लाल ओठ तो जैसे केवल मुस्कराने और चूमने के लिए ही बनाये गये थे। लेकिन लीलेश की केवल यह सुन्दरता ही उसकी मा को सबसे अधिक हर्षदायक नहीं थी, बल्कि यह बात भी थी कि वह उसकी अकेली संतान थी। यही कारण था कि लीलेश की छोटी-से-छोटी बात भी अलैग्ज़ैंड्रा को बहुत सुन्दर, बहुत प्यारी लगती थी—जैसे वह स्वर्गिक विभूति हो। घंटों वह लीलेश को अपनी गोद मे कुदाती थी, खिलाती थी—छाती से चिपटाये चिपटाये फिरती थी।

लीलेश का एक अलग छोटा-सा कमरा था, जिसमें उसके सब खिलौने रखे रहते थे। इस कमरे की प्रत्येक वस्तु सुन्दर थी; प्रसन्नता की दीप्ति मे दमकती थी। अलैग्ज़ैंड्रा को अगर कहीं सुख, शान्ति और प्रसन्नता मिलती तो इसी कमरे में। और सच बात तो

यह है कि उसे पल भर भी अपने पति के पास बैठना नहीं सुहाता। वे बड़े रूखे-रूखे लगते थे उसे। उनकी आदतों में जो रूखापन भरा था। खाली ठंडा पानी पीना और ठंडी-ठंडी हवा खाना, हर वक्त ठंडे-ठंडे रहना—होठों पर ठंडी-ठंडी ठिठुरी हुई-सी मुस्कान लिये फिरना—बस यही उसके पति को आता था। जिधर से वे निकल जाते, उधर ही जैसे सरसता पर तुषारापात कर जाते। नीरसता तो जैसे उनके साथ-साथ चलती थी।

नेसलेतियेव दम्पत्ति—माडेस्टोविख और अलैग्जैंड्रोवना ने बिना सोचे-समझे और प्रेम किये विवाह किया था। वास्तव में उनकी शादी ठहराई हुई थी। वह पैंतीस वर्ष का युवक था, यह पच्चीस वर्ष की युवती। दोनों ही अच्छे सम्पन्न घरानों के थे। उसे पत्नी की आवश्यकता थी, और यह विवाह-योग्य हो ही गई थी।

अलैग्ज़ैंड्रोवना को विवाह पक्का होने के बाद ऐसा लगने लगा था कि वह अपने भावी पति से प्रेम करती है और इससे उसे ख़ुशी होती थी। उसके भावी पति देखने में सुन्दर और सज्जन मालूम ही पड़ते थे। उनकी भूरी-भूरी आँखों से स्वाभिमान और बुद्धिमानी जैसे टपकी पड़ती थी। उन्होंने बड़ी शालीनतापूर्वक अपनी प्रेयसी के प्रति सभी उचित कर्तव्यों का पालन किया था।

और वह भी सुन्दरी थी। लम्बी और स्वस्थ; काली-काली बड़ी-बड़ी आँखें, काले घने केश, और बहुत शर्मीली—किन्तु चतुर भी।

माडेस्टोविख को दहेज़ नहीं चाहिए था। पर यह जानकर उसे ख़ुशी ज़रूर हुई थी कि लड़की के पास कुछ सम्पत्ति है। उसके अच्छे नाते-रिश्ते थे और उसकी पत्नी भी बड़े प्रभावशाली घराने की थी। उसने सोचा—'इन दोनों बातों से शायद कभी सुअवसर आने पर लाभ हो।' वह अपने व्यवहारों में बड़ा शान्त और धीमा रहता था। अपने को न इतना बड़ा दिखाता था कि दूसरे लोग उससे ईर्ष्या करें, और न इतना छोटा ही रखता था कि उसे दूसरों से ईर्ष्या करनी पड़े। उसका हर काम समय पर और उचित ढंग से होता था।

विवाह के बाद अपनी पत्नी के साथ माडेस्टोविख के व्यवहार में ऐसी कोई बात नहीं मालूम पड़ती थी जो बुरी कही जा सके। किन्तु, जब अलैग्ज़ैंड्रा गर्भवती हुई थी, तब माडेस्टोविख ने यों ही अस्थायी रूप से किसी दूसरी स्त्री के पास जाना शुरू कर दिया। किसी तरह अलैग्ज़ैंड्रोवना को यह बात मालूम पड़ गई, पर इससे उसके हृदय को कोई विशेष चोट नहीं लगी और इस बात पर स्वयं उसे भी आश्चर्य था। अपने नव शिशु का मुख देखने की लालसा और अधीरता में उसके अन्य सभी विचार खो गये थे। उसके लड़की पैदा हुई। उसने उसके पालन-पोषण में अपना तन-मन लगा दिया। पहले तो वह पति से भी अपनी नन्हीं बच्ची की तनिक-तनिक-सी बात बड़ी ख़ुशी के साथ कहती थी, लेकिन जब उसने देखा कि वे उसकी बातें केवल विनम्रतावश बिना मन से सुना करते हैं, तब उसने कहना बन्द कर दिया। इसके बाद सेराफ़िमा

दिन-प्रति-दिन पति की ओर से खिंचती ही चली गई। वह अपनी लीलेश को वैसा ही अतृप्त-सा, उमड़ता हुआ-सा प्यार करती थी जैसा कि पति से निराश पत्नियाँ अपने नवीन नवयुवक प्रेमियों के प्रति प्रदर्शित किया करती हैं।

"मामा—चलो 'पिलिआतकी* खेलें'"—लीलेश जब तुतला-तुतला कर अपनी मीठी आवाज़ से अपनी मा से कहती, तो मा का दिल खुशी से फूल-फूल उठता।

और फिर लीलेश अपने नन्हें-नन्हें मोटे-मोटे पैरों से क़ालीन पर ठुमकती हुई भाग जाती और चारपाई के पीछे पर्दे में छिप जाती। वहाँ से हँसकर अपनी प्यारी मीठी आवाज़ में चीख़ती—"मा—मा—ता! ता!" और फिर बाहर एक आँख निकालकर शैतानी से देखती।

"मेरी बिटिया प्यारी कहाँ है?—कहाँ है?" लीलेश को झूठ-मूठ ढूँढ़ती हुई अलैग्ज़ैंड्रा कहती।

छिपे-छिपे ही लीलेश खिल-खिल कर हँस पड़ती, और थोड़ा-सा बाहर निकल आती। तब मा उसके छोटे-छोटे हाथ पकड़कर कहती, जैसे अभी हाल ही उसे देखा हो, "मिल गई, मिल गई, मेरी लीलेश—यह रही मेरी लीलेश—मेरी रानी बिटिया!"

लीलेश तब दौड़कर मा की गोद में मुँह छिपा लेती, और खूब हँसती। मा उसे अपने घुटनों में दाब लेती। भावोन्मेष से उसकी आँखें चमक पड़तीं।

* प्रयात्की—लुका-छिपी खेल के लिए रूसी शब्द।

"मा—मा अब तुम छुपो,"—हँसते-हँसते रुक कर लीलेश कहती ।

मा छिपने जाती । लीलेश मुँह फेर कर खड़ी हो जाती जैसे देख ही नहीं रही हो, पर चुपके-चुपके देखती रहती । मा अलमारी के पीछे छिप जाती और वहाँ से बोलती—"ता—ता ! रानी बिटिया—ता !"

लीलेश चारों तरफ कमरे में भाग-भाग कर ढूढ़ती । वह जानती थी कि मा अलमारी के पीछे खड़ी है, तब भी उसी की तरह वह भी झूठ-मूठ ढूंढ़ती—

"मा-मा कहाँ है—कहाँ ?" वह पूछती, "मा—मा यहां भी नहीं है,......यहाँ भी नहीं है", और यह चिल्ला-चिल्ला कर कमरे में एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ती फिरती ।

मा सिर दीवार से लगाये साँस रोके खड़ी ही रहती । उसके बाल कुछ बिखर जाते । और उसके लाल-लाल ओंठ अलौकिक प्रसन्नता से मुस्करा उठते ! कुछ क्षणों के लिए तो वह सचमुच सुखांचल में छिप जाती ।

फ़िदोसिया अपनी मालकिन के इस खेल-तमाशे को दूर खड़े होकर मुस्करा-मुस्करा कर देखती और सोचती—'मा भी जैसे नन्हीं बच्ची हो—बिलकुल वैसी ही लगती हैं मालकिन—देखो न कैसी चञ्चल हैं, कैसी उत्सुक !' और फिदोसिया उनके इस खेल में विघ्न नहीं डालती । वह लीलेश की आया, है देखने में सुन्दर है और मीठे स्वभाव की, यद्यपि कुछ चालाक है ।

लीलेश धीरे-धीरे दबे पाँवों मा की तरफ बढ़ रही थी

मा का मन खेल में प्रतिपल खोया जा रहा था। उसके बाल और भी बिखर गये। दीवार से वह चिपटती ही चली जाती थी। उसका हृदय धक्-धक् करने लगा।

लीलेश ने कोने में छिपी मा की तरफ जैसे एकाएक देखा और ख़ुशी के मारे उछल पड़ी।

"मिल गई—तू—मिल गई!" वह ज़ोर से ख़ुश होकर ताली पीटकर चिल्ला पड़ी। और हाथ पकड़ कर मा को कमरे के बीच में खींच लाई।

मा की भी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था। दोनों खिलखिला खिलखिला कर ख़ूब हँसीं।

लीलेश ने फिर मा के घुटनों में अपना मुँह छिपा लिया और तुतला-तुतला कर न जाने कहाँ-कहाँ की कैसी-कैसी बातें गलबलाती रही।

इसी समय माडेस्टोविच लीलेश के कमरे की तरफ़ आये। कमरे के अधखुले किवाड़ों में से ही उन्हें हँसी-ख़ुशी का शोर सुनाई पड़ गया था।

अपनी वही रूखी-रूखी हँसी हँसते हुए वे कमरे में घुसे। कपड़े बिलकुल ढंग से पहने हुए वे एकदम स्वस्थ और ताज़े लगते थे। उनके आते ही कमरे में जैसे ताज़गी, सफ़ाई और सर्दी फैल गई। उनकी उपस्थिति के रूखेपन से खेल की सरसता जैसे मर गई—जैसे खेल की जान निकल गई, कमरे में जैसे

तुषारपात हो गया ! फ़िदोसिया तक सकुचा गई, कुछ अपनी मालकिन की ओर देखकर सहम गई। सेराफ़िमा तो एकदम चुप हो गई और ऊपर से दिखाने के लिए कुछ रूखी-सी भी। यह सब देखकर नन्हीं बच्ची ने भी हँसना बन्द कर दिया और चुपचाप ध्यान से अपने पापा को देखने लगी।

माडेस्टोविख ने कमरे में चारो तरफ एक बहुत सरसरी और मुलायम-सी नज़र डाली। इस कमरे में आने उन्हें अच्छा लगता था, क्योंकि यह सुंदरता से सजा हुआ था।

कमरे की ऐसी सजावट स्वयं अलैग्ज़ैंड्रोवना ने की थी, क्योंकि वह लीलेश को बचपन से ही नितात सौंदर्यपूर्ण वाता-वरण में पालना चाहती थी। वह बड़े चाव से शृङ्गार करती थी, सो भी केवल लीलेश के लिए।

पर सर्गे माडेस्टोविख को अलैग्ज़ैंड्रोवना का हर वक़्त उस कमरे में लीलेश के साथ रहना अखरता था।

अलैग्ज़ैंड्रोवना फिर उन्हीं के साथ कमरे से चली गई। दरवाज़े से निकलते वक़्त जैसे यों ही चलते हुए किसी क़दर अन्यमनस्क भाव से माडेस्टोविख ने उससे कहा, "क्यों तुम्हारा क्या ख़याल है—अगर लीलेश्का तुम्हारे बिना कुछ देर अकेली रहा करे?—और यह सिर्फ़ इसलिए कि बच्ची को कुछ अपनापन भी समझना चाहिए,"—उन्होंने अलैग्ज़ैंड्रोवना की उलझन से भरी दृष्टि का जैसे समाधान किया।

"पर अभी तो वह इतनी छोटी है कि.... ."

"कुछ भी हो। मेरी यही एक छोटी-सी राय है। मैं ज़बर्दस्ती नहीं करता। यहाँ तुम्हारा राज है, यह तुम्हारा काम है—तुम जानो।"—और यह कहकर वे अपनी वही रूखी हँसी हँस दिये।

"मैं सोचूँगी"—अलैग्ज़ैंड्रोवना ने कहा।

फिर वे लोग इधर-उधर की और-और बातें करने लगे।

(२)

उसी दिन शाम को रसोईघर में बैठी हुई आया फ़िदोसिया कम बोलनेवाली नौकरानी दरिया और बूढ़ी खाना बनानेवाली बातून अगाथिया से मालकिन के लीलेश के साथ लुकाछिपी खेलने की बात सुना रही थी—"बच्ची अपना छोटा-सा मुँह जाली के पीछे छिपाकर कहती है—'ता! ता!'—और मालकिन खुद भी तो जैसे नन्ही बच्ची हैं।"

अगाथिया ने सुनकर सिर हिला दिया जैसे कोई बुरी बात हो गई। उसके मुख पर भारीपन और दुर्भावना-सी छा गई, कहने लगी—"मालकिन यह खेल करती हैं, सो तो ठीक है, लेकिन वह नन्हीं बिटिया भी करती है, यह बुरी बात है।"

"क्यों?" फ़िदोसिया ने चकित होकर पूछा। इस भावना से उसका मुख लकड़ी की मूर्ति-जैसा हो गया।

"हाँ, बुरा नहीं है, तो क्या!" अगाथिया ने ज़ोर देकर कहा, "बहुत बुरी बात है!"

"अच्छा?" फ़िदोसिया ने कहा और उसके मुख पर लकड़ी की मूर्तिवाला भाव और अधिक उभर कर आने लगा।

"वह छिपेगी, और छिपेगी और बिलकुल छिप जायगी," अगाथिया ने दरवाज़े की तरफ़ सतर्क होकर देखते हुए धीरे-से कहा, जैसे कोई रहस्यभरी बात हो।

"तुम कह क्या रही हो ?" डरकर फ़िदोसिया ने पूछा।

"मेरी बात याद रखना—मैं ठीक कह रही हूँ,"—अगाथिया ने उसी प्रकार रहस्यमय और विश्वासपूर्ण स्वर में कहा।

उस बुढ़िया ने यह एक नई बात उसी समय अचानक खोज निकाली थी। इसका उसे बड़ा गर्व था।

(३)

लीलेश्का सो रही थी और अलैग्ज़ैंड्रोवना अपने कमरे में बैठी लीलेश की बातें मन ही मन सोचकर ख़ुश हो रही थी। उसने नन्ही लीलेश की मीठी याद की, फिर सुन्दर युवती लीलेश की मधुर कल्पना की, और फिर उस युवती लीलेश की नन्हीं लीलेश के रूप में कल्पना की—अर्थात् हमेशा वह अपनी मा की नन्हीं लीलेश बिटिया ही रहेगी।

अलैग्ज़ैंड्रोवना ध्यान में ऐसी निमग्न बैठी थी कि कब फ़िदोसिया कमरे में आई और उसके सम्मुख खड़ी हो गई, इसका उसे आभास तक न हुआ।

फ़िदोसिया डरी हुई और उद्विग्न-सी थी। काँपते हुए स्वर में उसने कहा—"मालकिन, मालकिन !"

अलैग्ज़ैंड्रोवना चौंक पड़ी। फ़िदोसिया के भयातुर मुख को देखकर चिंतित हो गई। वह उठ खड़ी हुई।

"क्या हुआ फ़िदोसिया ?" उसने आशंकित मन से पूछा, "क्यों, क्या लीलेश की कोई बात है ?"

"नहीं तो, मालकिन," फ़िदोसिया ने अलैग्ज़ैंड्रोवना का हाथ उठाकर आश्वासन देने और बैठने के लिए संकेत करते हुए कहा, "भगवान् उसकी बड़ी उमर करे—वह तो सो रही है। मैं आपसे एक बात—एक बात—कहना चाहती थी......वह लीलेश जो लुकाछिपी का खेल खेला करती है न......सो यह अच्छी बात नहीं है।" फ़िदोसिया ने मालकिन को टकटकी लगाकर देखा। डर के मारे उसकी आँखे फटी-फटी-सी थीं।

"क्यों अच्छी बात नहीं है ?" अलैग्ज़ैंड्रोवना ने परेशान होकर पूछा। अनिष्ट की अदृश्य आशंका उसके मन में आप ही समाने लगी थी।

"यह कितनी बुरी बात है, सो मैं आपको क्या बतलाऊँ !" फ़िदोसिया ने कहा। उसके मुख से निश्चय और विश्वास का भाव झलक रहा था।

"ठीक ठीक कहो, क्या बात है ?" सेराफ़िमा ने खीझकर बे मन से कहा, "तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आती !"

"देखो मालकिन, यह एक बुरा सगुन होता है," फ़िदोसिया ने कुछ लज्जित-सी होकर अलैग्ज़ैंड्रोवना को समझाया।

"सब बेकार की बकवास है !" सेराफ़िमा ने कहा।

वह सुनना नहीं चाहती थी कि कैसा अपशकुन है, और उससे क्या नुक़सान होगा। फिर भी जाने कैसे, उसके मन में कुछ

उदासी और डर-सा भर गया, और यह बड़ा ओछापन मालूम होता था कि एक ऐसी बे-सिर-पैर की बात उसकी प्रिय सुमधुर कल्पनाओं में विघ्न डाले, और उसे इतना अधिक उद्विग्न कर दे।

"हाँ, मैं यह तो जानती हूँ कि बड़े लोग इन सगुनों को नहीं मानते, लेकिन यह तो बड़ा बुरा सगुन है मालकिन," फ़िदोसिया ने रुआसी आवाज़ में कहा, "नन्हीं बिटिया छिपते-छिपते.. ..." और फिर एकाएक फूट-फूट कर रोने लगी। ज़ोर-ज़ोर से सुबकने लगी ! "छिपते-छिपते वह हमेशा के लिए छिप जायगी—नीचे क़ब्र में—बेचारी प्यारी नन्हीं परी. ....कैसी देवी-सी है वह," कहकर अपनी नाक साफ करते हुए उसने अपनी चादर से आँसू पोंछ लिये।

कुछ गम्भीर, किन्तु धीमे स्वर में अलैग्ज़ैंड्रोवना ने पूछा—"यह सब किसने कहा तुमसे ?"

"अगाथिया ने कहा है", फ़िदोसिया ने उत्तर दिया, "इस बारे में वही सब बातें जानती है !"

अलैग्ज़ैंड्रोवना क्रोध से झुँझला पड़ी—"जानती है ! क्या बेहूदगी है ! अब कभी आयन्दा मेरे पास ऐसी बेहूदी बातें करने मत आना। चलो, जाओ !"

फ़िदोसिया को भेजकर सेराफ़िमा जैसे अपने को इस नई व्यथा से बचाना चाहती थी, किन्तु बचा न सकी। फ़िदोसिया तो मुँह लटका कर वहाँ से चली गई, लेकिन अलैग्ज़ैंड्रोवना बड़बड़ाई—"क्या बेहूदी बात है ! जैसे लीलेश मर जायगी !"—और लीलेश

की मृत्यु का ध्यान उसके ऊपर अधिकतर होने लगा—उसकी नस-नस में समाने लगा। फिर अलेग्ज़ेंड्रोवना ने शान्त मन से विचार किया—"इन मूर्ख औरतों के ये अंध-विश्वास हैं। और भला कहीं इन मामूली-से खेलों का बच्चों के जीवित रहने से कोई सम्बन्ध हो सकता है!"

उस दिन शाम को उसने इधर-उधर की बहुत-सी बातें सोच-कर अपना ध्यान बाँटना चाहा, लेकिन रह-रहकर लीलेश का वही लुका-छिपी का खेल उसके मन में आ जाता। 'उसे यह खेल इतना अच्छा क्यों लगता है?'—वह सोचती।

जब लीलेश्का बिलकुल शिशु ही थी और आया और मा को पहचानना सीखा ही था, तब कभी-कभी वह आया की गोदी में बैठे-बैठे एकाएक मुँह बनाकर उसकी छाती में छिपा लेती थी। फिर वहाँ से आँखें चमका कर ताकती थी।

इधर कुछ दिन पहले, जब अलेग्ज़ेंड्रोवना लीलेश्का के कमरे में नहीं होती थी, तब आया उसे लुका-छिपी का खेल सिखाती थी। दो-एक बार अचानक ही कमरे में आ जाने पर सेराफिमा ने अपनी लीलेश को लुका-छिपी खेलते देखा। वह उसे बहुत सुन्दर लगा और फिर स्वयं ही वह लीलेश के साथ यह खेल खेलने लगी थी।

(४)

दूसरे दिन लीलेश्का का काम-काज करने में अलेग्ज़ेंड्रोवना रोज़ की तरह ही अपने को भूली रही, क्योंकि उसे लीलेश की

छोटी से छोटी बात मे आनन्द आता था; इसलिए वह फिदोसिया की कलवाली बात बिलकुल भूल गई।

किन्तु जब खाना तैयार करने का अगाथिया को आदेश देकर वह लीलेश्का के कमरे में लौटी, तब मेज़ के नीचे से अचानक "ता ! ता !" की आवाज़ सुनकर वह डर गई। यद्यपि उसने बाद को अपने मन को बहुतेरा समझाया-बुझाया कि ऐसी बे-सिर-पैर की बातों से डरना नहीं चाहिए, फिर भी वह अपने मन से पूरी तरह डर निकाल नहीं सकी, और उस दिन लीलेश के साथ लुका-छिपी खेलने में उसका मन नहीं लगा। वह बराबर लीलेश का ध्यान और और तरफ ले जाने का प्रयत्न करती रही।

लीलेश्का बड़ी प्यारी बच्ची तो थी ही, पर कहना मान लेती थी। अपनी मा का कहना उसने एकदम मान लिया, लेकिन तब भी अपनी आदत के कारण उस दिन दो-एक बार कोने में छिप कर उसने कहा—"ता ! ता !"

अलैग्ज़ैंड्रोवना ने लीलेश को ख़ुश करने की बहुत कोशिशें कीं, लेकिन यह आसान काम नहीं था, क्योंकि डरावने विचार बराबर उसके मन में उठ उठ कर उसे परेशान कर रहे थे—"लीलेश बार बार "ता—ता" की रट क्यों लगाये रहती है? वह एक ही बात कहते-कहते थकती क्यो नही—क्या हमेशा के लिए आँखें मींच लेना चाहती है—क्या हमेशा के लिए अपना मुँह छिपाना चाहती है वह? शायद उसे अन्य बच्चो की तरह बहुत-सी चीज़ों से प्यार नहीं है। कोई चाहना नहीं है, कोई लालच

नहीं। अगर ऐसी बात है, तो यह क्या कोई तन्दुरुस्ती की ख़राबी नहीं ? यह ज़्यादा दिन ज़िन्दा न रहने का दुनिया से कोई अचेतन विराग है ?"

इस प्रकार अनेक भयावह आशङ्काओं से अलैग्ज़ैंड्रोवना का हृदय व्यथित रहने लगा। फिदोसिया के सामने अब वह लीलेश के साथ लुका-छिपी नहीं खेलती। अपनी इस दुर्बलता से वह स्वयं बहुत लज्जित होती है। और यह खेल खेलने की उसकी इच्छा बढ़ती ही जाती थी, पर ज्यों ज्यों यह इच्छा बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों उसकी व्यथा और उद्विग्नता भी बढ़ती जाती थी। वह अपने को खो देना चाहती थी, और खोई हुई लीलेश को खोज लेना चाहती थी—यही आकर्षण था लुका-छिपी के खेल में उसके लिए। एकाध बार उसने अपनी तरफ़ से ही पहले खेल शुरू किया, पर उसका मन भारी हो आया। उसे ऐसा लगा जैसे वह जान-बूझकर कोई बुरा काम कर रही हो।

उस दिन सेराफिमा अलैग्ज़ैंड्रोवना बहुत उदास रही।

(५)

लीलेश्का को नींद लग रही थी। उसकी चारपाई नीची थी और उस पर मच्छरदानी लगी हुई थी। उस पर वह चढ़ गई और लेटते ही सोने लगी। मा ने उसे नीला कम्बल उढ़ा दिया। लीलेश ने अपनी छोटी-छोटी गोरी-गोरी बाँहें कम्बल से बाहर निकाल कर फैला दीं। वह मा को चिपटा लेना चाहती थी। मा

झुक गई। लीलेश के निद्रालु मुख पर बड़ी कोमलता थी। उसने सिर उठाकर अपनी मा को चूम लिया और फिर तकिए पर सिर रख कर लेट रही। अपने हाथो को कम्बल मे छिपाती हुई वह बोली—"हाथो की ता—ता !"

मा के हृदय की गति जैसे रुकने लगी—लीलेश कैसी चुप-चाप लेटी है, नन्हीं-नन्हीं, दुबली-दुबली।

लीलेश धीमे से मुस्कराई, फिर अपनी आँखें बन्द करके बोली—"आँखो की ता—ता !"

फिर इसके बाद कम्बल से मुँह ढक कर बोली! "लीलेश ता—ता !"

इतना कहकर वह सो गई। तकिए से उसका मुख दब रहा था। कम्बल से ढकी हुई वह अलेग्ज़ैंड्रोवना को बहुत छोटी-छोटी और दुबली-पतली लग रही थी। उसने आँखों मे उदासी भर कर सोती हुई लीलेश को देखा।

अलेग्ज़ैंड्रोवना बहुत देर तक खड़ी-खड़ी सोती हुई लीलेश्का को देखती रही। उसके मन मे कुछ भय-सा समाया हुआ था।

"मै ही तो इसकी मा हूँ, क्या मै ही इसकी रक्षा नही कर सकूँगी ?"—अलेग्ज़ैंड्रोवना ने वही खड़े-खड़े सोचा और अनेक बुरी-बुरी शंकायें उसके मन मे उठने लगी।

रात भर वह सोई नहीं, अपनी लीलेश के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती रही, फिर भी उसकी उदासी दूर नही हुई।

(६)

बहुत दिन बीत गये।

एक दिन लीलेश्का को ठंढ लग गई। उसी दिन रात को उसे बुखार चढ़ आया।

फ़िदोसिया ने जाकर अलैग्ज़ैंड्रोवना को जगाया। वह उठी और लीलेश के पास आई। उसने देखा वह बुखार में तप रही है, बहुत बेचैन, बेकल है। तुरंत ही अपशकुन की बात उसे याद आ गई और दुराशा से उसका मन भर गया।

फ़ौरन डाक्टर बुलाया गया। उसने लीलेश्का को देखा और दवाई दी—पर होनी होकर रही।

अलैग्ज़ैंड्रोवना ने अपने मन को आश्वासन दिलाने का प्रयत्न किया—लीलेश अच्छी हो जायगी, वैसे ही हँसेगी, खेलेगी, कूदेगी—पर उसका मन नहीं माना। यह सुख उसे अब दुर्लभ लगता है—मानो यह सब अब स्वप्न हो जायगा।

लीलेश्का की बीमारी प्रतिपल बढ़ती ही गई।

घर में सब लोग शांत रहते थे, जिससे कि अलैग्ज़ैंड्रोवना घबरा न जाये; किंतु सबको चुपचाप देखकर अलैग्ज़ैंड्रोवना और भी भयातुर और भी शंकित,—और भी उदास हो उठती!

सबसे अधिक दुःख उसे तब होता था जब फ़िदोसिया रो-रोकर कहती थी—"छिपते—छिपते—छिपने लगी न हमारी लीलेश!—हाय......!"

परन्तु अलैग्ज़ैंड्रोवना का मस्तिष्क भीषण हो उठा था,

विशृङ्खलित, अस्त व्यस्त—उसकी समझ में कुछ नहीं आता था कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है।

बुखार लीलेश्का को जलाये डालता था। कभी कभी वह बेहोश हो जाती थी। और बेहोशी में ही बड़बड़ाती थी। किंतु होश में वह सारे दर्द को, तकलीफ़ को, चुपचाप सह लेती थी। मा को देखकर वह धीमे से मुस्करा देती थी, जिससे कि मा को मालूम न हो कि उसकी तबीअत बहुत खराब है।

तीन दिन बीत गये। लीलेश्का बहुत कमज़ोर हो गई। वह नहीं जानती थी कि अब मैं मरनेवाली हूँ।

लीलेश्का की आँखों में धुँधलापन छा रहा था। अपनी मा को देखते हुए वह बहुत ही धीमी और भर्राई हुई आवाज़ में बोली—"ता—ता, मा! 'ता—ता' खेलोगी मा—ता—ता!"

और मा ने अपना मुँह लीलेश की मच्छरदानी में छिपाकर कहा—"ता—ता!"......उफ़!

......कितना करुण दृश्य था वह!

"मा......!" लीलेश के केवल ओठ हिले, स्वर नहीं निकला।

मा अपनी बच्ची के ऊपर झुक गई। लीलेश की आँखों का धुँधलापन बढ़ता ही जाता था—किसी तरह से उसने अपनी प्यारी मा का पीला मुरझाया हुआ, हताश मुख अंतिम बार देखा......!

"अच्छी मा-मा...प्यारी मा-मा......मा...मा!" लीलेश के ओठ फिर हिले।

और मा के मुर्झाये हुए सफेद चेहरे पर मुर्दनी छा गई।

लीलेश की आँखों के आगे अँधेरा......काँपते हुए निर्बल हाथों मे पलंग की चादर पकड़ते हुए लीलेश ने कहा—"ता—ता !" उसके गले मे फिर कुछ अटक-सा गया। घर-घर हुई—लीलेश के ओठ एक बार खुले और ज़ोर से हिलकर एकदम बंद हो गये।

मा एकदम उसके ऊपर झुक पड़ी—"लीले—ता—ता—!"

पर "ता—ता !" कर छिपते-छिपते लीलेश बिलकुल सदा के लिए छिप चुकी थी !

लीलेश्का को छोड़कर अलैग्ज़ैंड्रोवना कमरे मे निकल गई। वह एकदम बिलकुल चुप थी !

पति के पास जाकर बोली—"लीलेश मर गई !" उसका स्वर भारी था, पर शांत।

माडेस्टोविच ने चिंतित होकर अपनी पत्नी के निर्जीव-से मुख को देखा—उन पर जैसे बिजली टूट पड़ी—अपनी अलैग्ज़ैंड्रोवना के सरस सौंदर्य को आज प्रथम बार उन्होंने इतना उदास—इतना निर्जीव देखा !

(७)

लीलेश्का को कपड़े पहनाये गये, फिर उसे ताबूत मे रखकर बाहर बैठक में ले गये।

सेराफ़िमा अलैग्ज़ैंड्रोवना ताबूत* से लगी खड़ी थी और अपनी मुर्दा बच्ची को एक विचित्र भाव से देख रही थी।

* वह सन्दूक जिसमें मुर्दा रखा जाता है।

माडेस्टोविच अपनी पत्नी के पास पहुँचे और उसे अपने रूखे-रूखे शब्दों में सान्त्वना देने लगे, और उन्होंने उसे ताबूत के पास से हटाने का प्रयत्न किया।

सेराफिमा मुस्करा दी। "आप यहाँ से हट जाइए," उसने पति से धीरे से कहा, "नीलेश खेल रही है। वह अभी उछल कर दौड़ लगाती है।"

"सीमा रानी—पागलों की सी बातें मत करो," माडेस्टोविच ने धीमे स्वर में कहा, "जो भाग्य में लिखा होता है, वही होता है। अब इन बातों से फायदा? अपने मन को शांत करो—समझाओ!"

पर अलैग्जैंड्रोवना सेराफिमा की दृष्टि शव पर ही गड़ी रही; वैसे ही वह कहने लगी- "देखो -देखो वह अभी अभी उठकर खड़ी होती है!"

माडेस्टोविच ने घूमकर अपने चारों तरफ देखा। पत्नी की इस बेवकूफी और पागलपन से वे डर गये। उन्होंने फिर कहा, "सीमा रानी, घबराओ नहीं—भला अब वह ज़िंदा हो सकती है! उन्नीसवीं सदी में ऐसी दैवी बातें नहीं हुआ करतीं!"

यह कहने के बाद तुरंत ही माडेस्टोविच को ध्यान आया कि वास्तव में परिस्थिति कैसी है, और मैं बातें कैसी बेटगी कर रहा हूँ।

यह विचार आते ही वे झुँझला पड़े। पत्नी का हाथ पकड़ कर वे उसे ताबूत के पास से सावधानी से खींच ले गये। अलैग्जैंड्रोवना ने कोई आपत्ति नहीं की।

सेराफिमा अलैग्ज़ेंड्रोवना के मुख पर भयानक चुप्पी थी। उसकी आँखें जैसे जड़ हो गई थीं। वहाँ से वह लीलेश्कावाले कमरे में चली गई और इधर-उधर कोनों में उसे ढूँढ़ने लगी—जैसे लुकाछिपी खेलते समय ढूँढा करती थी। कभी-कभी तो मेज़ और चारपाई के नीचे भी झुककर देखती और हँस-हँस कर कहती—"कहाँ है मेरी रानी बिटिया?—कहाँ है मेरी लीलेश—मेरी प्यारी बिटिया?"

एक बार चारों तरफ़ कमरे में ढूँढ लेने के बाद वह फिर नये सिरे से ढूँढ़ना शुरू करती।

एक कोने में उदासमुख फिदोसिया निश्चल बैठी हुई थी। मालकिन को इस हालत में देखकर वह डर गई। फिर एकदम वह फूट-फूट कर रोने लगी और हिचकी ले-लेकर कहने लगी—"हाय—हमारी गुड़िया-सी थी लीलेश—बिलकुल परी-सी—प्यारी लीलेश हाय—तुम छिपते-छिपते बिलकुल छिप गईं—हमेशा के लिए छिप गईं—कहाँ छिप गईं—हाय लीले ऽ—ऽ—ऽ—श!"

सेराफिमा अलैग्ज़ेंड्रोवना काँप उठी!—ठहर गई!—उद्विग्न होकर फिदोसिया को देखा और रो पड़ी!

आँखों में ही आँसुओं को पीती और होंठों में रुलाई को दाबती हुई वह कमरे से चुपचाप चली गई!

(८)

माडेस्टोविच ने शव दफनाने में शीघ्रता की। उन्होंने समझ लिया था कि अचानक आसमान से इस दुर्भाग्य के फट पड़ने पर

अलेग्ज़ेंड्रोवना के हृदय को बहुत बड़ा आघात पहुँचा है ! और इसी लिए उन्होंने सोचा कि जहाँ तक हो सके जल्दी ही लीलेश्का को उसके सामने से अलग कर देना चाहिए, तभी उसके ध्यान से वह हटेगी और उसे कुछ धीरज बँधेगा।

दूसरे दिन सबेरे सेराफिमा अलेग्ज़ेंड्रोवना ने सदैव की भाँति बड़े चाव से शृङ्गार किया—अपनी लीलेश के लिए !

शृङ्गार से सुसज्जित होकर जब वह बाहर बैठक में पहुँची, तब उसने आज पहली बार अपने और अपनी लीलेश के बीच में बहुत-से अजनबी लोगों को पाया।

कमरे में धूप और अगर का सुगन्धित नीला धूम्र उड़ रहा था। पादरी लोग इधर से उधर घूम रहे थे।

सेराफ़िमा ताबूत के निकट पहुँची। उसके मन का व्यथाभार इस वक्त उसे विचलित किये दे रहा था। ताबूत में लीलेश्का निश्चल और मूक लेटी थी, पर अलेग्ज़ेंड्रोवना को वह मुस्कराती मालूम पड़ी। वह ताबूत पर अपने कपोल टेक कर बैठ गई और बोली—"ता—ता ! नन्ही बिटिया ता !—लीले रानी—ता !"

पर लौटकर उसकी रानी बिटिया ने 'ता—ता !' नहीं की, नहीं की !

फिर एकाएक अलेग्ज़ेंड्रोवना सेराफ़िमा के चारों ओर कुछ हलचल-सी हुई। अनजान और अनावश्यक से कई लोग ताबूत के ऊपर झुके। उनमें से किसी ने उसे उठा लिया—और लीलेश्का को कहीं ले चले !

सेराफिमा उठकर सीधी खड़ी हो गई। वह खोई खोई-सी थी। उसने एक आह भरी और फिर मुस्कराकर चीख पड़ी—"लीलेश !"

लीलेश घर से बाहर ताबूत में लेटी जा रही थी। मा का दिल फट पड़ा। चीख कर वह ताबूत के पीछे भागी। लेकिन लोगों ने उसे पकड़ लिया।

जिस दरवाज़े से लीलेश्का को ले गये थे वह बन्द कर दिया गया था। अलेग्ज़ेंड्रोवना उससे टिक कर खड़ी हो गई। फिर वहीं देहरी पर बैठ गई और किवाड़ों की संधों में से झांक कर चिल्लाई—"लीलेश ता—!—लीलेश ता—ता !"

फिर खिलखिला कर वह हंस पड़ी!

मा से उसकी बेटी लीलेश को छीनकर जो लोग बाहर ले जा रहे थे वे सड़क पर चलते नहीं बल्कि भागते मालूम पड़ते थे।

वानका

चेखव

नौ बरस का बानका ज़्हूकोव तीन महीने से अलियाखिन मोची के पास काम करता था।

कल बड़ा दिन था और आज रात को वानका बैठा जग रहा था। जब उसके मालिक और मालकिन तथा मातहत लोग शाम को गिरजे चले गये, तब उसने उठकर मालिक की अल्मारी में से दवात और होल्डर निकाले; होल्डर की निब में ज़ंग लगी थी; फिर एक सिकुड़न पड़े हुए काग़ज़ का टुकड़ा लेकर वह पत्र लिखने बैठा। किन्तु न जाने क्यों पहला ही अक्षर लिखने से पहले उसने चुपचाप कनखियों से दरवाज़े और खिड़की को देखा, फिर सामने रखी हुई उस सौम्य मूर्ति को, जिसके इधर-उधर जूतों के लकड़ीवाले साँचे अल्मारियों में भरे हुए थे, कई बार ताका, और तब उसने हृदय हिला देनेवाली एक आह खींची। काग़ज़ सामने बेंच पर रखा था और वह घुटने टेके बैठा था।

"प्यारे दादा कौन्सटैन्टिन मकारिक," उसने लिखना शुरू किया, "मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। बड़े दिन के लिए मेरे हृदय की शुभ-कामनायें और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको सब तरह से प्रसन्न रखे। मेरे न माँ है, और न पापा। आप ही अब मेरे सब कुछ हैं।"

सामने की खिड़की में उसकी मोमबत्ती का प्रतिबिम्ब प्रकाशित हो रहा था। वानका ने उसमें अपने दादा के चित्र की सजीव कल्पना की। उसका दादा कौन्सटैन्टिन मकारिक मेसर्स ज़ीवारेव के यहाँ चौकीदार था। ६५ वर्ष का वृद्ध मकारिक ठिगना और दुबला था, किन्तु असाधारण रूप से फुर्तीला और जानदार। चुदी-चुदी-सी उसकी आँखें थीं, और वह हमेशा मुस्कराता रहता था। सारे दिन वह नौकरों की रसोई में पड़ा सोया करता या रसोइयों से गप लड़ाया करता। रात को भेड़ की खाल का अपना लबादा पहनकर वह मकान के चारों तरफ डंडे से खटखटाता घूमता था। उसके पीछे-पीछे सिर डाले हुए बूढ़ी कुतिया काशताँका और कुत्ता वियू चलते थे। अपने लम्बे बदन, काले कोट और लोच मछली की-सी सूरत के कारण कुत्ते का नाम वियू पड़ा था।

वियू असाधारण रूप से सीधा और मिलनसार था। अजनबी लोगों की ओर भी वह उतनी ही कोमलता से देखता था जितनी से कि अपने मालिक की। किन्तु उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। उसकी सिधाई और कृपा-दृष्टि में सबसे अधिक वेधनेवाली कलुषता छिपी रहती थी। टाँग को झपट कर काटने, गोश्त के सन्दूक में सरक जाने या मुर्गी का चूज़ा चुरा लाने में क़स्बे का कोई दूसरा कुत्ता उससे बढ़कर न था। और अपनी इन करतूतों के लिए कई बार उसकी पिछली टाँगें क़रीब-क़रीब तोड़ दी जा चुकी थीं, दो बार बाँधकर वह लटकाया भी गया था,

और हर सप्ताह वेनो को इतनी मार पड़ती थी कि अधमरा हो जाता था; लेकिन फिर भी वह हमेशा अच्छा हो गया और वैसी ही हरकतें करता रहा।

अपनी चुंधी आँखों की पलकें मारते हुए इस वक्त वानका का दादा अवश्य ही गिरजे की लाल-लाल चमकीली खिड़कियों के फाटक पर खड़ा देख रहा होगा, कभी कभी अपने भारी-भारी बूट फटफटाते हुए वह लोगों से आँगन में हँसी कर लेता होगा, कमर से बँधी हुई पेटी में अपना डंडा लटकाये सर्दी में घूमते हुए उसे बूढ़ों की-सी सूखी खाँसी भी आ जाती होगी; और कभी किसी रसोइये या नौकर की लड़की को छेड़ भी देता होगा।

"हुलास नहीं सूँघनी है क्या आज ?" वह पूछता है और अपनी हुलास की डिब्बी खोलकर औरतों के आगे कर देता है। वे औरतें एक चुटकी लेकर छींक देती हैं।

और उस बूढ़े को जैसे अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है; ठहाका मार कर हँस देता है और चीख़ कर कहता है---

"छोड़ो भी इसे, तुम्हारी नाक भी जम जायगी इससे !"

यही नहीं, कुत्तों को भी वह हुलास सुँघाता है। काशतांका छींक कर नाक सिकोड़ती है और फिर जैसे रूठ कर चल देती है। वियूँ सूँघता नहीं, बड़े अदब से अपनी नाक हटा लेता है और दुम हिलाने लगता है। मौसम बड़ा सुहावना है। हवा की एक लहर भी नहीं है। आसमान साफ़ है। हल्की-हल्की बर्फ़ गिर

रही है। रात तो निपट अँधेरी है, पर सारा का सारा गाँव, सफेद सफेद छतें और चिमनियों से निकलते हुए धुएँ के लच्छे, तुषाराच्छादित चाँदी से चमकते पेड़-पौदे, और हिमपात से बने हुए कगार—सब कुछ ही तो साफ-साफ दिखाई देता है। चमचम करते सितारों से विजड़ित गगन जगमगाता है और वह आकाश गंगा इतनी श्वेत और निर्मल दीख पड़ती है जैसे उस पर चाँदी की क़लई कर दी गई हो।

वानका ने फिर आह भरी और दवात में क़लम डुबोकर लिखने लगा—

"कल रात मैं पिटा था। मालिक ने मेरे बाल खींचकर मुझे आँगन में पटक दिया और फिर चमड़े की पट्टी से ख़ूब मारा। बात बस यह थी कि मैं उसके बच्चे का पालना झुलाते-झुलाते सो गया था। और अभी इसी सप्ताह की तो बात है कि एक दिन मालकिन ने मुझे हरिंग मछली साफ़ करने को दी और मैंने उसे पूँछ की तरफ़ से साफ करना शुरू किया। बस इतने में ही उसने हरिंग मेरे हाथ से झपट ली और उसकी नाक की तरफ़ से मेरे मुँह पर दे मारी। मालिक के और जो सहकारी हैं, वे भी मुझे छेड़ते हैं; वोडका शराब लेने भट्टी पर भेज देते हैं, मालिक की ककड़ी चुरवाते हैं और जब उसे मालूम हो जाता है, तब उसके जो कुछ हाथ पड़ता है, मुझ पर दे मारता है। खाने को कुछ भी नहीं मिलता। सुबह को सूखी रोटी मिलती है, दोपहर को पानी की लपसी और शाम को फिर वही सूखी रोटी। चाय और खट्टी

गोभी का रसा तो मालिक-मालकिन ही अकेले डकार जाते हैं। मुझे ड्योढ़ी में सुलाते हैं और जब उनका पिल्ला चीख़ता है, तब मुझे उठकर पालना झुलाना पड़ता है, सो इसके मारे रात भर सो नहीं पाता हूँ.....मेरे प्यारे दादा, भगवान् के लिए मुझे यहाँ से अपने यहाँ ले जाओ......ले जाओ न......मैं अब यह सब सह नहीं सकता......मैं आपके पैरों पड़ता हूँ..... मैं भगवान् से हमेशा आपके लिए प्रार्थना करूँगा......मुझे ले जाइए यहाँ से ....नहीं तो मैं मर जाऊँगा......" लिखते-लिखते वानका ने मुँह बिचकाया और सुबकने लगा; आँसुओं को अपनी गन्दी मुट्ठी से पोंछ डाला।

आगे उसने फिर लिखना शुरू किया—"मैं आपकी तमाखू माँज दिया करूँगा, आपके कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करूँगा, और अगर मुझसे कभी कोई भूल हो जाये, तो चाहे मुझे बेंतों से उधेड़ दीजिएगा। और अगर आप सचमुच यह सोचते हों कि मुझे कोई काम करने को नहीं मिलेगा, तो मैं मैनेजर साहब से कहूँगा कि भगवान् के लिए मुझे जूते ही साफ़ करने को दे; नहीं तो फिर फेडिया के बजाय मैं ही भेड़ें चरा लाया करूँगा।...मेरे प्यारे दादा—मैं यह मुसीबत सह नहीं सकता—इससे तो मैं मर जाऊँगा ...मैंने सोचा था कि यहाँ से गाँव भाग जाऊँ, लेकिन मेरे पास जूते भी तो नहीं हैं और आज-कल बर्फ़ इतनी पड़ रही है; और देखो दादा, जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, तब आपकी ख़ूब अच्छी तरह देख-भाल करूँगा। आपको कोई कष्ट नहीं दे सकेगा तब। और

जब आप स्वर्ग चले जायेंगे, तब मैं आपकी आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करूँगा, जैसे आजकल मैं अपनी मां पिला-गुइया के लिए करता हूँ........

"और मास्को तो बहुत बड़ा शहर है। यहां सब भद्र लोगों के ही मकान हैं। बहुत सारे घोड़े हैं। भेड़ें तो हैं नहीं और कुत्ते काटते ही नहीं हैं। बड़े दिन पर यहाँ बच्चे कागज़ की फिरकी घुमाते हुए नहीं निकलते और न किसी को मिलकर 'कोरस' में गाने की आज्ञा है। एक दिन एक दूकान में मैंने सब तरह की मछलियाँ सरलता से पकड़ने के लिए बहुत तरह के काँटे और बंसियाँ देखीं। एक काँटा तो ऐसा था कि आध सेर की शीट मछली तक उससे पकड़ी जा सकती है। और जैसी मालिक की बन्दूक है, वैसी ही बहुत-सी बन्दूकें दुकानों पर बिकती हैं और मैं समझता हूँ कि एक-एक बन्दूक की क़ीमत सौ-सौ रूबल तो होगी। हाँ, और गोश्त की दुकानों में मुर्ग़ाबी, खरगोश और तीतर का गोश्त भी मिलता है, लेकिन दुकानदार यह कभी नहीं बतलाता कि किसने और कहाँ से उनका शिकार किया है।

"और दादा प्यारे, जब आपके मालिक लोग बड़े दिन की डाली आपको दें, तो उसमें से एक अच्छा बड़ा-सा काग़ज़ी अख-रोट निकालकर मेरे हरे सन्दूक में छिपाकर रख दीजिएगा। और अगर वह छोटी लड़की ओल्गा इग्नात्येवना पूछे, तो कह देना कि यह वानका के लिए है।"

रह रह कर वानका आहें भरता और फिर खिड़की की ओर

ताकने लगता। उसे याद आया कि उसके दादा सदा बड़े दिन के लिए पेड़ की डाली लेने जंगल जाया करते थे और उसे भी साथ ले जाते थे। ओह, वे दिन कितने सुख के थे! बर्फ कटती होती और दादा दाँत किटकिटाते होते, तब वानका की भी दाँती बजने लगती थी। और तब पेड़ की डाल काटने से पहले उसके दादा अपना चुरट पीते थे, हुलास सूँघते थे और फिर ठंड से ठिठुरते हुए वानका को हँसी में चिढ़ाते थे...और तुषार से ढके हुए फ़र के छोटे छोटे पेड़ निश्चल मौन खड़े हुए सोचते कि उनमें से कौन काटा जायगा और इसी बीच में कहीं से एकाएक कोई ख़रगोश उछलकर हिम-कगार पर फ़ुदकने लगता...तब दादा एकदम चीख़ पड़ते! "पकड़ो! पकड़ो! पकड़ लो न इस दुमदार बदमाश को!"

उनमें से किसी पेड़ को समूचा उखाड़ कर वानका का दादा अपने मालिक के घर ले जाता और फिर वे सब मिलकर उसे सजाते थे। परन्तु इस सजावट का सबसे अधिक काम छोटी ओल्गा इग्नात्येवना ही करती थी। वह वानका की पक्की दोस्त थी। जब उसकी मा पिलागुइया जीवित थी और वहाँ नौकर थी, तब ओलगा वानका को ख़ूब मिश्री खिलाती थी, और क्योंकि उसे कुछ काम करने को तो था नहीं, इसलिए उसको पढ़ना, लिखना और सौ तक गिनती सिखाती थी, और कभी कभी नाचना भी बताती थी। परन्तु जब पिलागुइया मर गई, तब बेचारे अनाथ वानका को अपने दादा के साथ रसोई में काम करना पड़ा और

फिर वहाँ से उसे मास्को में अलियाग्विन मोची के पास भेज दिया गया।

"जल्दी आओ मेरे दादा", वानका ने फिर लिखना शुरू किया। "मैं कहता हूँ, भगवान के नाम पर मुझे यहाँ से ले जाओ। मुझ अनाथ पर दया करो। यहाँ मुझ पर मार पड़ती है। मैं बहुत भूखा हूँ। और मेरा मन कितना उदास है यह कैसे बताऊँ। हर वक्त मैं रोता रहता हूँ। उस दिन मालिक ने मेरे सिर में लकड़ी खींच कर मारी, मैं ज़मीन पर गिर पड़ा और बस मरते मरते बचा। मैं बड़ा अभागा हूँ, कुत्ते से भी बदतर मेरी ज़िन्दगी... अलिओना, कानें ईगर, और गाड़ीवान को मेरी शुभ-कामनायें। हाँ, देखिए मेरी बाँसुरी कोई न ले। बस—

आपका नाती, आइवान ज़ूकोव। प्यारे दादा, आना ज़रूर।"

चार तह करके वानका ने पत्र लिफ़ाफ़े में बंद कर दिया। यह लिफ़ाफ़ा उसने रात ही को एक कोपेक में ख़रीदा था।

फिर वह कुछ देर तक सोचता रहा। क़लम में स्याही ली और पता लिखा :

"मेरे दादा का गाँव"

फिर रुक गया और सिर खुजलाते हुए सोचकर लिखा :—

"कान्सटैन्टिन मकारिक"

और बस। उसका काम समाप्त हो गया। कोई भी विघ्न नहीं पड़ा। इसी से प्रसन्न होकर वह उठ खड़ा हुआ। टोपी पहनी,

और फिर बिना अपना भेड़ की खालवाला लबादा लिये वैसे ही केवल कमीज़ पहने हुए बाहर सड़क पर भाग गया।

रात जब वह लिफाफा खरीदने गया था, तब पोस्ट आफिस का पता एक मुर्गी, बत्तख़ और अंडे की दुकान पर बेचनेवाले से मालूम किया था। उसी ने यह भी बतला दिया था कि चिट्ठियाँ लैटर-बॉक्स में डाली जाती हैं, जहाँ से वे सारी दुनिया में बाँट दी जाती हैं। उसने वानका को बतलाया कि घंटी बजाते हुए शराब के नशे में चूर डाक-ठेला लिये जो लड़के घूमा करते हैं, वे ही यहाँ चिट्ठी बाँटते हैं।

वानका दौड़ा दौड़ा सबसे समीप के लैटर-बॉक्स पर पहुँचा। उसने अपना बहुमूल्य पत्र उसमें डाल दिया।

और आशा के मृदुल झूले में झूलता हुआ वानका घंटे भर बाद मीठी नींद में सो भी गया।

स्वप्न में उसने देखा कि उसका दादा नंगे पैर रसोई में अँगीठी के पास टाँगें हिलाता हुआ बैठा एक पत्र पढ़कर रसोइयों को सुना रहा है और वियूँ अपनी दुम हिलाता हुआ अँगीठी के इधर-उधर घूम रहा है।

शर्त

चेखव

पतझड़ की अँधेरी रात थी।

बूढ़ा महाजन अपने कमरे में इधर से उधर व्यग्र होकर टहल रहा था। आज से पन्द्रह बरस पहले पतझड़ के दिनों में उसने एक दावत की थी। इस समय उसी की याद उसे रह-रह कर आ रही थी। दावत में अनेक गण्य-मान्य और सुयोग्य व्यक्ति उपस्थित थे। अत्यन्त आमोद-प्रमोद रहा। बड़ी विनोदपूर्ण बातें भी हुई थीं। उसी बात-चीत के सिलसिले में अपराधों के लिए मृत्यु-दंड पर बात चल पड़ी। अधिकतर उपस्थित सज्जनों ने, जिनमें अनेक विद्वान् और पत्रकार भी थे, मृत्यु-दंड का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि दंड की यह व्यवस्था बिलकुल असभ्य और बर्बर है और यह आज न केवल ईसाई-धर्म के लिए ही अनुपयुक्त हो उठी है, वरन् पूर्ण रूप से अनैतिक और अमानुषिक भी है। उनमें से फिर कुछ लोगों ने यह भी कहा कि इससे तो आजन्म कारावास ही अच्छा है।

"पर मैं आपसे सहमत नहीं," मेज़बान ने कहा, "वैसे न तो मुझे मृत्यु-दंड का कोई अनुभव है, और न आजन्म कारावास का ही, किन्तु यदि यों भी देखा जाय तो मेरी सम्मति में मृत्यु दंड

आजन्म कारावास की अपेक्षा कहीं अधिक नैतिक और मानुषिक है। फाँसी से एकदम मृत्यु हो जाती है, जन्म भर बन्दी रहकर आदमी घुल-घुलकर मरता है। अब बतलाइए कौन-सा ढंग अधिक अच्छा है—वह, जो कुछ क्षण कष्ट देकर जान ले लेता है या कि वह जो वर्षों तक धीरे-धीरे ज़रा-ज़रा-सी जान बराबर खींचता रहे?"

"दोनों ही एक-से हैं—एकदम अमानुषिक," एक अतिथि ने कहा, "क्योंकि ध्येय दोनों का एक ही है—प्राण लेना। शासक ईश्वर तो है नहीं। इसलिए किसी भी ऐसी चीज़ को लेने का उसे अधिकार नहीं है, जिसे वह माँगे जाने अथवा अन्य आवश्यकता पड़ने पर लौटा न सके!"

उन्हीं लोगों में एक वकील साहब भी थे, जिनकी अवस्था पच्चीस के लगभग होगी। जब उनकी राय पूछी गई, तो वे बोले, "मृत्यु-दंड और आजन्म कारावास दोनों ही समान रूप से बुरे हैं: लेकिन अगर मुझसे पूछा जाय कि तुम कौन-सा पसन्द करोगे, तो मैं वास्तव में आजन्म कारावास ही चाहूँगा। बिलकुल ही मर जाने से किसी भी तरह जीवित रहना अधिक अच्छा है।"

बस फिर क्या था, बहस में जैसे जान पड़ गई। महाजन, जो उस समय वकील साहब से उम्र में कुछ छोटा था और जल्दबाज़ भी, एकाएक बिगड़ खड़ा हुआ, मेज़ पर अपनी मुट्ठी दे मारी, और वकील साहब की ओर मुड़कर चीख़ कर कहने लगा—

"बिलकुल झूठ! मैं बीस-बीस लाख की शर्त बदता हूँ कि आप पाँच बरस भी अकेले एक कोठरी में बन्दी नहीं रह सकते!"

वकील ने कहा।

...माना। आपके ...

मैं आपको ... दी।

और यह ...

समय महाजन के पास ... थे।

करना था। इस बात से ... नहीं

वकील साहब को ... लगा

ठिकाने कीजिए! मेरे लिए तो ...

जनाब की जिन्दगी के सबसे ...

जायेंगे! मैंने केवल तीन चार वर्ष ...

जानता हूँ कि इससे अधिक समय ...

नहीं सकेगी। और हो फिर मुझे अभागे ...

पाई हुई सजा से माँगी हुई सजा ...

भारी हो जाती है। और फिर केवल

जब चाहूँ, स्वतंत्र हो सकता हूँ, आपके

मुझे सचमुच आप पर बड़ा तरस आता

यह कहने के बाद महाजन ने ...

... चक्कर काटते-काटते ही अपने

ारावास की अपेक्षा कहीं अधिक नैतिक और मानुषिक
नी में एकदम मृत्यु हो जाती है, जन्म भर बन्दी रहकर
घुल घुलकर मरता है। अब बतलाइए कौन-सा ढंग अधिक
—वह, जो कुछ क्षण कष्ट देकर जान ले लेता है या कि
ार्षों तक धीरे-धीरे ज़रा-ज़रा-सी जान बराबर खींचता रहे?"
नों ही एक-से हैं—एकदम अमानुषिक," एक अतिथि
"क्योंकि ध्येय दोनों का एक ही है—प्राण लेना। शासक
है नहीं। इसलिए किसी भी ऐसी चीज़ को लेने का
धिकार नहीं है, जिसे वह माँगे जाने अथवा अन्य
कता पड़ने पर लौटा न सके!"

ी लोगों में एक वकील साहब भी थे, जिनकी अवस्था
लगभग होगी। जब उनकी राय पूछी गई, तो वे बोले,
ड और आजन्म कारावास दोनों ही समान रूप से बुरे
न अगर मुझसे पूछा जाय कि तुम कौन-सा पसन्द करोगे,
ास्तव में आजन्म कारावास ही चाहूँगा। बिलकुल ही मर
किसी भी तरह जीवित रहना अधिक अच्छा है।"

फिर क्या था, बहस में जैसे जान पड़ गई। महाजन, जो
य वकील साहब से उम्र में कुछ छोटा था और जल्दबाज़
[illegible] था, मेज़ पर अपनी मुट्ठी दे मारी,
[illegible] —
[illegible] हूँ कि
रह सकते

"अगर आप वास्तव में सच कह रहे हैं, तो मैं शर्त बदकर कहता हूँ कि मैं पाँच ही नहीं, पन्द्रह बरस तक रह सकता हूँ !"—वकील ने कहा।

"पन्द्रह ! अच्छा तो फिर शर्त बद गई !" महाजन ने चीख कर कहा, "सब लोगों के सामने मैं बीस लाख की शर्त बदता हूँ !"

"माना ! आपके बीस लाख और मेरी स्वतन्त्रता !" वकील ने शर्तकी स्वीकृति दी।

और यह हँसी-हँसी की बात वास्तव में शर्त हो गई। उस समय महाजन के पास लाखों थे। मौज करता था और बर्बाद करता था। इस शर्त से वह फूला नहीं समाया। खाना खाते समय वकील साहब को छेड़ने लगा—"अरे जनाब, ज़रा अपने होश ठिकाने कीजिए ! मेरे लिए तो बीस लाख कुछ भी नहीं हैं, लेकिन जनाब की ज़िन्दगी के सबसे क़ीमती तीन-चार वर्ष बेकार खो जायेंगे ! मैंने केवल तीन-चार वर्ष ही इसलिए कहा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इससे अधिक समय तक आप अपनी शर्त पर जम नहीं सकेंगे। और हो मित्र बड़े अभागे—यह भी नहीं जानते कि पाई हुई सज़ा से माँगी हुई सज़ा काटनी कहीं अधिक कठिन और भारी हो जाती है। और फिर केवल यह ध्यानमात्र ही कि मैं जब चाहूँ, स्वतंत्र हो सकता हूँ, आपके जीवन में विष घोल देगा। मुझे सचमुच आप पर बड़ा तरस आता है।"

यह कहने के बाद महाजन ने कमरे में एक कोने से दूसरे कोने तक चक्कर काटते-काटते ही अपने मन से पूछा—

"मैंने यह शर्त क्यों बदी ? इससे लाभ ? वकील तो केवल पन्द्रह वर्ष ही हारता और मैं बीस लाख ! क्या इससे लोग यह मान लेंगे कि मृत्यु-दण्ड की अपेक्षा आजन्म कारावास ही श्रेष्ठ है ? नहीं, नहीं ! यह सब बेहूदगी है ! मेरे लिए तो यह शर्त केवल एक रईस आदमी का खेल थी, और वकील के लिए सोने का निरा लालच ही लालच ।"

'फिर उस दावत के बाद क्या हुआ ?'—महाजन ने याद किया—यह तय हुआ था कि वकील साहब महाजन के घर के बाग में ही बंदी किये जायें । उनके ऊपर पूरी पूरी कड़ी निगरानी रखी जाय । और यह भी तय हुआ था कि उस अवधि के अंदर वे कोठरी की देहरी तक नहीं लाँघ सकेंगे; किसी भी जीवित मानव का मुख नहीं देख सकेंगे; उनकी आवाज़ तक नहीं सुन सकेंगे, और न चिट्ठी-पत्री तथा समाचार-पत्र ही पढ़ सकेंगे । उन्हें आज्ञा थी तो केवल बाजा बजाने, किताबें पढ़ने, पत्र लिखने और शराब तथा तम्बाकू पीने की । बाहरी दुनिया से वे केवल चुपचाप इशारों से ही संबंध रख सकते थे और इसके लिए उनकी कोठरी में एक छोटी-सी खिड़की बनवा दी गई थी । उस खिड़की में से लिखकर डाल देने से किताबें, बाजे, शराब आदि सभी ज़रूरी चीज़ें वे मँगा सकते थे । जिससे कि बंदी का जीवन अधिक से अधिक अकेला हो सके, शर्त में छोटी से छोटी बातों का ध्यान रखा गया था । १४ नवम्बर, १८७० ई० के बारह बजे से लेकर वकील को १४ नवम्बर, १८८५ ई० के बारह बजे तक कारावास

में रहना था। शर्तों के प्रतिकूल यदि बंदी का तनिक भी कोई प्रयत्न होगा, चाहे वह अवधि समाप्त होने से दो मिनट पूर्व ही हो, तो महाजन की शर्त टूट जायगी और वह बीस लाख न देने के लिए स्वतंत्र होगा।

वकील साहब की छोटी छोटी चिट्ठियों में जो कुछ अनुमान लगाया जा सकता था, उससे यही ज्ञात हुआ कि कारावास के प्रथम वर्ष में अकेलेपन के भार ने उन्हें बहुत सताया। उनका जी बुरी तरह उकताने लगा था। दिन-रात उनकी कोठरी में बस प्यानो का संगीत ही सुन पड़ता था। तम्बाकू और शराब का पीना उन्होंने छोड़ दिया और लिखा—"शराब इच्छाओं को उकसाती है और इच्छायें ही बंदी की मुख्य शत्रु हैं; दूसरे अकेले अकेले ही अच्छी शराब पीने से जितना जी ऊबता है, उतना और किसी बात से नहीं", और तम्बाकू के धुएँ से उनके कमरे की हवा गंदी हो जाती थी। पहले साल में उनके पास प्रेम-प्रपंच से भरे हुए मनोरंजक उपन्यासों, रहस्य और रोमांचकारी कहानियों आदि की मन बहलानेवाली पुस्तकें भेजी गई थीं।

दूसरे वर्ष में प्यानो की ध्वनि बंद हो गई और वकील साहब ने केवल गंभीर विषयों पर पुस्तकें मँगवाईं। पाँचवें वर्ष में फिर संगीत सुनाई पड़ने लगा, और बंदी ने मदिरा माँगी। जिन लोगों ने उन्हें उस वर्ष भर देखा है, उनका कहना है कि वे खाने, पीने और लेटे रहने के अतिरिक्त दिन-रात कुछ नहीं करते थे। जम्हाई लेते थे और क्रोधित होकर अपने आपसे ही बातें करते थे।

किताब पढ़ते नहीं थे। कभी कभी रात को उठकर लिखने लगते थे। बहुत बहुत देर तक बैठे लिखते रहते थे और सबेरे को सब फाड़ डालते थे। कई बार वे रोते हुए भी सुने गये।

छठे वर्ष के बीच में वकील ने जुटकर अनेक भाषाओं, दर्शन और इतिहास का अध्ययन करना शुरू किया। इतनी तेज़ी से उन्होंने किताबें पढ़ीं कि महाजन के लिए यह एक मुसीबत हो गई कि वह इतनी जल्दी जल्दी इतनी सारी किताबें कहाँ से लाकर दे। चार वर्ष के भीतर-भीतर उसे छः सौ पुस्तकें अपने बंदी के लिए ख़रीदनी पड़ीं। उन्हीं दिनों की बात है कि महाजन को वकील साहब का यह पत्र मिला था—

"प्रिय जेलर,

मैं यह पत्र छः विभिन्न भाषाओं में लिख रहा हूँ। कृपा करके इन्हें भाषा-विशेषज्ञों को दिखलाइए और इन्हें पढने के बाद अगर वे इनमें एक भी ग़लती न बतलायें, तो आप कृपा करके बाग़ में एक बन्दूक़ छुड़वा दें। केवल उसकी आवाज़ सुनकर मैं जान लूँगा कि मेरा प्रयत्न निष्फल नहीं गया। सभी युगों में सभी देशों के महान् प्रतिभावान् व्यक्ति विभिन्न भाषाओं में बोलते हैं, लिखते हैं, किंतु उन सभी के अंतर में एक-सी ही ज्योति जलती है। ओह! और अब मैं उनको समझ सकता हूँ—कितनी प्रसन्नता होती है मुझे इस विचार से—आप शायद जानते तो......!

आपका—बंदी"

बन्दी की आकांक्षा पूरी की गई। महाजन ने बाग में दो फ़ायर करवा दिये थे।

दसवें वर्ष के बाद वकील साहब मेज़ पर निश्चल बैठे हुए केवल 'न्यू टैस्टामैंट' (बाइबिल) ही पढ़ते रहते थे। महाजन को बड़ा आश्चर्य होता था कि वह व्यक्ति, जो चार वर्ष में ही बड़े-बड़े छै सौ महान् ग्रंथों के विशाल परिज्ञान में पारगत हो गया, एक बाइबिल जैसी सरल और सुबोध तथा पतली पुस्तक को पढ़ने में एक वर्ष कैसे लगा सकता है। न्यू टैस्टामेंट के बाद वकील साहब ने विभिन्न धर्मों और उनके दर्शन का अध्ययन प्रारम्भ किया।

अपने कारावास के अंतिम दो वर्षों में वकील साहब ने असाधारण रूप से अधिक पढ़ा, यद्यपि कभी कुछ, कभी कुछ। अभी प्रकृति-विज्ञान की कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं, तो थोड़ी देर बाद बायरन की कविता, और फिर उसे भी छोड़ कर उठा लेते हैं शेक्सपियर के नाटक। जो किताबें वह चिट्ठी लिख-लिख कर मँगाते थे, वे एक साथ ही रसायन-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि विषयों पर होती थीं।

वे ऐसे पढ़ रहे थे जैसे विध्वस्त जलयान के टुकड़ों के बीच समुद्र में तैर रहे हों और अपने जीवन की रक्षा करने के लिए जैसे वे एक के बाद एक टुकड़े का सहारा खोजते थे।

(२)

महाजन को यह सब कुछ याद आया और फिर उसने सोचा, "कल बारह बजे वह स्वतंत्र हो जायगा। और अपनी शर्त के

अनुसार उसे बीस लाख देने पड़ेंगे। अगर मैं इतना दे देता हूँ, तो फिर अब मेरे पास रह ही क्या जायगा। यही धन तो मेरे पास बच रहा है—यही तो मेरा सर्वस्व है। इसके चले जाने पर मैं बर्बाद हो जाऊँगा.. भिखारी......उफ़!"

पन्द्रह वर्ष पूर्व तो उसके पास असंख्य धन था, किंतु आज उसके ऊपर ऋण अधिक है कि सम्पत्ति—यह सोचने से ही उसे डर लगता है। फाटकेबाज़ी, सट्टेबाज़ी और बुढ़ापे में भी भोग विलास में रत रहने से उसका व्यापार धीरे-धीरे क्षीण होता गया। जो व्यक्ति कि व्यापार में बिलकुल निर्भयता, स्वाभिमान और आत्मविश्वास से काम करता था, वही आज एक मामूली महाजन भर रह गया है, और बाज़ार की तेज़ी-मंदी से पल-पल में काँप-काँप उठता है!

"हाय वह कम्बख़्त शर्त!" निराशा में अपना सिर पकड़ कर वह बड़बड़ाया.. ..."वह मर क्यों नहीं जाता? अभी सिर्फ़ चालीस साल का ही तो है—मेरी पाई-पाई ले जायगा और फिर शादी करेगा, मौज करेगा, फाटका खेलेगा—और मैं उसकी तरफ़ दीन भिखारी बना ललचाई आँखों से देखूँगा और प्रतिदिन उसके मुँह से यही सुनूँगा—'मेरे जीवन के सुख के दाता आप ही हैं। आइए, मैं आपकी कुछ सहायता कर दूँ?' नहीं, वह मैं सह नहीं सकूँगा! इस दिवालियेपन और अपमान से बचने का केवल एक उपाय है—केवल एक—वह है उसकी मौत...... मौत......!"

घड़ी अभी तीन बजा चुकी थी। महाजन कान लगाये सुन रहा था। घर में सब कोई सोये हुए थे और खिड़कियों से बाहर बर्फ से ढके हुए पेड़ों की साँय-साँय ही सुनाई पड़ती थी। बिना ज़रा-सी भी आवाज़ किये उसने अपनी तिजोरी से वह कुंजी निकाली जिसने पन्द्रह साल पहले एक आदमी को बंदी किया था। फिर अपना ओवरकोट पहन कर वह घर से बाहर हो गया।

बाग़ में निपट अँधेरा था और ठिठुरन भी। पानी बरस रहा था। सर्द हवा के झोंके हूक हूक उठते थे और पेड़ों को झक झोरे डालते थे।

महाजन आँखें फाड़ फाड़ कर चल रहा था, लेकिन न उसे पेड़ दिखाई देते थे, न रास्ता ही सूझ पड़ता था: बाग़ की सफेद मूर्तियाँ भी नहीं दीख पड़ती थीं और न बंदी की वह कोठरी।

बंदी की कोठरी के पास पहुँचकर उसने पहरेदार को दो आवाज़ें दीं।

कोई उत्तर नहीं आया।

अवश्य ही इस ख़राब मौसम से बचने के लिए वह रसोई में अथवा नन्हे पौदों के शीशेवाले घर में जाकर सो रहा होगा।

"अगर मैं साहसपूर्वक अपना काम कर डालूँ," बूढ़े महाजन ने सोचा, "तो सबसे पहले पहरेदार ही पर तो सन्देह होगा!"

अँधेरे में टटोल-टटोल कर उसने सीढ़ियों और दरवाज़े को पाया। फिर वह बड़े कमरे में पहुँचा। वहाँ से वह एक तंग रास्ते में घुसा और दियासलाई जलाई। कोई भी नहीं था। बिलकुल

सुनसान था। एक चारपाई एक तरफ़ को खड़ी थी, बिस्तरा था नहीं। एक अँधेरे कोने में एक अँगीठी लुढ़की पड़ी थी। बंदी-गृह के द्वार जैसे के तैसे बंद थे—पन्द्रह वर्ष से आज तक !

दियासलाई बुझ गई। बूढ़ा अधीरता से काँप रहा था। उसने बंदी की खिड़की में झाँका !

कोठरी में एक मोमबत्ती धीमे धीमे जल रही थी। बन्दी मेज़ के सहारे बैठा था। केवल उसकी पीठ, सिर के बाल, और हाथ दिखाई दे रहे थे। खुली हुई किताबें इधर-उधर मेज़ पर, दो कुर्सियों पर, और मेज़ के पास बिछे क़ालीन पर बिखरी हुई थीं।

पाँच मिनट बीत गये, लेकिन बन्दी एक बार भी न हिला, न डुला। पन्द्रह वर्ष के कारावास ने उसे निश्चल बैठना सिखा दिया था।

महाजन ने अपनी उँगली से खिड़की पर 'कुट कुट' की, किन्तु बंदी निश्चल था, निश्चल रहा।

तब महाजन ने सावधानी से ताले में कुंजी डाली—ताला जैसे कराह उठा।

फिर किवाड़े खोले। वे खड़के—और चरमराये—जैसे वे रो पड़े।

महाजन आशा कर रहा था कि कोई आश्चर्यजनक चीख़ सुनाई पड़ेगी और पदध्वनि भी। किन्तु तीन मिनट बीत गये, कोठरी की मूकता मूक ही रही।

महाजन ने अंदर घुसने के लिए साहस बटोरा।

मेज़ के सामने एक आदमी बैठा था, जो साधारण मनुष्यों से बिलकुल भिन्न था। वह एक कङ्कालमात्र था, जिस पर खाल ऐसी चिपटी हुई थी जैसे खूब खींच-तान कर चढ़ाई गई हो। बाल औरतों के-से बड़े बड़े और घुँघराले थे, और दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी हुई। मुख का रंग मटीला पीला था। गाल पिचक गये थे। पीठ में खाली रीढ़ ही रीढ़ रह गई थी और उसके वे हाथ जिन पर उसका झबरा सिर झुका हुआ था, इतने दुबले-पतले थे कि देखने से डर लगता था। बालों में सफ़ेदी आ चुकी थी और उसके लटके और पिचके हुए रक्तहीन मुख को देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि इस व्यक्ति की अवस्था केवल चालीस वर्ष की है। मेज़ पर उसके झुके हुए सिर के सामने एक कागज़ का टुकड़ा पड़ा था, जिस पर कुछ लिखा हुआ था।

"बेचारा ग़रीब लालची", महाजन ने सोचा, "सो रहा है और शायद इस समय स्वप्न में लाखों की सम्पत्ति देख रहा होगा। इस अधमरे को चारपाई पर ढकेल कर मुझे इसका पेट तकिए से दबा भर देना है और फिर बस काम तमाम है। किसी परीक्षा से यह मालूम नहीं हो सकेगा कि इसकी मृत्यु स्वाभाविक नहीं हुई है। लेकिन इसने इस कागज़ पर क्या लिखा है, सो तो मैं पढ़ लूँ!"

मेज़ पर से कागज़ उठाकर महाजन उसे पढ़ने लगा—

"कल रात को बारह बजे मैं इस कारावास से मुक्त होकर सब लोगों से मिलने का अधिकार पा जाऊँगा। लेकिन इस कमरे को छोड़ने और सबेरा देखने से पहले मैं आपसे कुछ कहना

आवश्यक समझता हूँ। अपनी स्वच्छ आत्मा और ईश्वर की दुहाई देकर मैं कहता हूँ कि मैं स्वतन्त्रता, जीवन, स्वास्थ्य, पुस्तकें आदि उन सभी चीज़ों से, जिन्हें आप सुखदायक समझते हैं, घृणा करता हूँ।

"पन्द्रह वर्ष से मैं सासारिक जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करता रहा हूँ। यह तो ठीक है कि मैंने न संसार देखा है और न लोग देखे हैं, किन्तु आपकी पुस्तकों-द्वारा ही मैंने सुगन्धित मदिरा पी है, गीत गाये हैं, जङ्गलों में हिरन और सुअर का शिकार खेला है, और प्रेम किया है.... और कवियों की कल्पना के जादू से उत्पन्न सुन्दरी परियाँ मेरे पास रात को आई हैं और मेरे कानों मे बड़ी मधुर और आश्चर्यजनक कहानियाँ उन्होंने कही हैं। उन कहानियो ने मुझमें विचित्र मादकता भर दी। आपकी पुस्तकों ने ही मुझे एलबुर्ज़ और माट ब्लैंक की चोटियो पर चढ़ा दिया है। वहाँ से मैंने प्रातःकाल सूर्योदय देखा है और फिर सन्ध्या मे स्वर्णरञ्जित आकाश, सागर और पर्वत देखे हैं। वहीं से मैंने बिजली को बादलो में हँसते देखा है और देखे हैं हरे-भरे जङ्गल, खेत, सुन्दर नगर, सरितायें और झीलें। वहीं मैंने प्रकृति का मधुर सङ्गीत सुना है. और स्वर्ग से उतरते हुए देव-दूतो के पङ्ख स्पर्श किये हैं।.. .. आपकी पुस्तको मे ही मैंने अपने आपको असीम अनन्त में खो दिया है, महान् और अद्भुत कार्य किये हैं, नगर के नगर जला-कर भस्म कर दिये हैं, नये नये धर्म चलाये हैं, समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर ली है.. ..।

"आपकी पुस्तकों ने मुझे ज्ञान दिया है। अनेक युगों में सजित मानव की कल्पना और विचार का सार मेरे मस्तिष्क में समा गया है। आज मैं जानता हूँ कि मैं आप सब लोगों से अधिक चतुर हूँ। और मैं आपकी इन सब पुस्तकों, सारे सांसारिक सुखों और ज्ञान से घृणा करता हूँ—उनकी उपेक्षा करता हूँ। इस संसार में सभी कुछ मृगतृष्णा के समान है—भ्रम, मिथ्या, शून्य, शक्तिहीन! तुम सुन्दर हो, ज्ञानवान् हो, गौरवशाली हो—फिर भी मृत्यु एक दिन आकर तुम्हें इस संसार से मिटा देगी—तुम वैसे ही मर जाओगे जैसे बिल में चुहिया मर जाती है। तुम्हारी संतति, तुम्हारा इतिहास, तुम्हारे प्रतिभावान् व्यक्तियों के कला-कौशल, बृहद् ज्ञान आदि की अमरता सभी कुछ जड़ होकर प्रलय के साथ समाप्त हो जायेंगे। तुम पागल हो, पथ-भ्रष्ट हो। तुम असत्य को सत्य समझते हो—कुरूपता को सौंदर्य। तुम आश्चर्य में भर जाओगे अगर सेब और सन्तरे के पेड़ों में फलों की जगह छिपकली और मेढक लगने लगें, और गुलाब के फूलों में घोड़े के पसीने की दुर्गन्ध आने लगे तो! और मैं भी तो तुम लोगों पर आश्चर्य करता हूँ जिन्होंने स्वर्ग के स्थान पर इस नरक—पृथ्वी—को अपनाया है। मैं तुम्हारी बातें न जानना चाहता हूँ और न समझता हूँ।

"जिस जीवन के लिए, जिसकी न्यामतों के लिए तुम लोग तरसते हो, उसकी मैं उपेक्षा करता हूँ और अपनी इस उपेक्षा को कार्यान्वित करने के लिए मैं वे बीस लाख छोड़ता हूँ, जिनकी

कभी मैंने स्वर्गिक सुख के समान कल्पना की थी ! और जिससे कि मै उस धन का अधिकारी न हो सकूँ, मैं अपने नियत समय मे पाँच मिनट पहले ही जानबूझ कर कारावास से निकल कर अपनी शर्त तोड़ दूगा !"

कागज़ पढ़ लेने के बाद महाजन ने उसे जैसा का तैसा वहीं मेज़ पर रख दिया और उस विचित्र व्यक्ति का मस्तक चूम कर रोने लगा।

वह कोठरी से बाहर बाग़ में आया। फाटके और सट्टे मे बड़े से बड़े नुक़सान होने पर भी आज से पहले उसे कभी अपने प्रति ऐसी घृणा और ग्लानि नही मालूम हुई थी, जैसी कि अब लग रही थी।

घर लौट कर वह चारपाई पर लेट गया, किन्तु उसका मन बड़ा उद्विग्न रहा। उसके आँसू बराबर बहते ही रहे......

दूसरे दिन सुबह बेचारा पहरेदार महाजन के पास दौड़ता दौड़ता आया और बोला कि वह बंदी रात खिड़की में से कूदकर बाहर बाग़ मे गया और फिर बाग़ के फाटक से निकल कर न जाने कहाँ चला गया।

नौकरो को साथ लेकर महाजन तुरन्त बाग़ में पहुँचा और अपने बंदी के भागने का सबूत पक्का करके चला आया। बेकार की अफ़वाहों से बचने के लिए वह बंदी का वह त्याग-पत्र भी, जो रात उसने पढा था, मेज़ पर से उठाकर साथ लेता आया और घर आकर उसे तिजोरी मे बंद कर दिया।

क्रांतिकारी

आर्टज़ियाबाशेव

मास्टर गैब्रील ऍंडरसेन स्कूल के बगीचे के किनारे जाकर तनिक ठहर गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। वहाँ सामने दो मील की दूरी पर सघन वन शुभ्र हिम-राशि पर सुनील कोर-सा लग रहा था। स्वच्छ और सुहावना दिन था। श्वेत पृथ्वी और उपवन की रेलिंग को प्रखर सूर्य की रश्मियाँ अनगिनती इन्द्रधनुषी रंगों से रंजित कर जगमगा रही थीं। वायु में वैसी ही निर्मलता और झीनापन था जैसा कि वसंत के प्रारम्भ में होता है। वन में कुछ देर घूमने के लिए मास्टर साहब ने अपने पग उस सुनील कोर की ओर बढ़ाये।

"मेरे जीवन का एक और वसंत!" ऐंडरसेन ने दीर्घ निःश्वास लेकर अपने चश्मे में से आकाश की ओर देखते हुए कहा और मन ही मन केवल भावुकता से भरी हुई कुछ कविता-सी करने लगे। अपने दोनों हाथ पीठ के पीछे किये बेत हिलाते हुए वे चले जा रहे थे।

कुछ पग आगे ही गये होंगे कि उन्होंने बगीचे की रेलिंग के उस पार कुछ घोड़े और सैनिक देखे। श्वेत हिम-पटल पर उन सैनिकों की भारी-भारी पोशाकें बड़ी फीकी-फीकी-सी लग रही थीं,

किन्तु उनकी तलवारें तथा घोड़ों की जाकिटें प्रकाश को प्रति-बिम्बित कर चमचमा रही थीं। हिमाच्छादित भूमि पर उन घोड़ों की चाल बड़ी भद्दी लगती थी। ऐंडरसेन ने आश्चर्यान्वित होकर सोचा कि ये लोग कर क्या रहे हैं, किन्तु अनायास ही उन्हें सैनिकों का कार्य अनुमान से ही विदित हो गया। तर्क की अपेक्षा उन्हें अपनी सहज बुद्धि से ही यह जानने में अधिक सहायता मिली कि यह सैनिक किसी भीषण कार्य के लिए ही यहाँ आये हैं। और इसी सहज बुद्धि ने उन्हें सैनिकों की दृष्टि से छिप जाने की सलाह दी।

मास्टर साहब जल्दी से बाईं ओर मुड़कर झुक गये और फिर पिघलते तथा चटखते हुए बर्फ पर रेंगते हुए वे घास के एक नीचे-से ढेर के पीछे सरक गये। वहाँ से गर्दन उठाकर वे सैनिकों का काम अच्छी तरह देख सकते थे।

वे कुल बारह सैनिक थे, जिनमें से एक ठिगने क़द का गठीला अफ़सर था जो ख़ाकी लबादा पहने था। लबादे में कमर पर चाँदी की एक सुंदर पेटी भी कसी हुई थी। अफ़सर का चेहरा इतना लाल था कि उतनी देर में भी ऐंडरसेन को उसकी हल्की, उठी हुई मूछों और भौंहों की अटपटी-सी सफ़ेद चमक उसकी खाल के साफ़ रंग में से दिखाई पड़ गई। और उसकी कर्कश ध्वनि के टूटे-फूटे स्वर भी मास्टर साहब को साफ़ सुनाई पड़ जाते थे।

"मुझे क्या करना है, क्या नहीं—सो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। किसी के परामर्श की मुझे कोई भी आवश्यकता नहीं!"

अफसर ने कड़क कर कहा, फिर अपनी भुजाय कस कर सैनिकों के विचलित दल में से किसी को घृणा की दृष्टि से देखा—"तुम पामर नीच ! मै तुम्हे विद्रोह करने का फल अच्छी तरह चखा दूँगा।"

ऐंडरसेन का हृदय धक् धक् करने लगा। 'हे भगवान्!'—उन्होंने सोचा, 'क्या यह सम्भव है?'

उनका सिर सुन्न हो गया, जैसे ठंड से जम गया हो ! "अफसर !" सैनिकों में से किसी एक का शांत, संयत और स्पष्ट स्वर निकला, "आपको कोई भी अधिकार नहीं है निर्णय करने का ! यह काम न्यायालय ही कर सकता है—आप न्यायाधीश नहीं हैं . ...आप हत्या करना चाहते......!"

"चुप रहो !" अफ़सर गरज पड़ा। क्रोध से पागल होकर उसका स्वर घुटा-सा जा रहा था, "मै—मै अभी तुझे न्यायालय दिखलाता हूँ ! आइवानोव, चलो बढ़ो !" कहकर उसने अपने घोड़े को एड़ लगाई और चल दिया।

गैब्रील की सज्ञा जैसे इस समय मशीन की तरह सचालित थी; वैसे ही उसने देखा कि घोड़ा बड़ी सावधानी से अपनी राह पर जा रहा है; एक एक पैर जैसे नाचने के लिए थिरक-थिरक कर रख रहा हो; उसके कान जैसे प्रत्येक ध्वनि को सुन लेने के लिए खड़े थे।

क्षण भर तक सैनिकों में बड़ी हलचल और उद्विग्नता फैली रही। तत्पश्चात् वे, काले कपड़े पहने हुए तीन व्यक्तियों को छोड़कर, विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये।

पीछे रह गये इन तीन व्यक्तियों में दो तो लम्बे थे, और तीसरा बहुत छोटा तथा दुर्बल। इस छोटे व्यक्ति के बाल एँडरसेन को दिखाई पड़ते थे : वे बहुत हलके-हलके थे, और उनमें से उसके गुलाबी-गुलाबी कान भी बाहर निकले हुए थे।

और अब मास्टर साहब की समझ में अच्छी तरह आ गया कि क्या होनेवाला है, किन्तु यह सब कुछ इतना असाधारण और इतना भयावह था कि उन्हें लगा मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

'इतना निर्मल—इतना स्वच्छ और सुन्दर—बर्फ़, खेत, वन और आकाश! प्रत्येक वस्तु में वसन्त की भीनी सुरभि व्याप्त है... और तब भी मनुष्यों की हत्या होगी! यह कैसे हो सकता है? असम्भव!' और इसके आगे वे कल्पना नहीं कर सके। उनके विचार अस्तव्यस्त होगये। एकाएक पागल होगये मनुष्य की-सी दशा उनकी होगई! वे ऐसी बातें देख रहे थे, सुन रहे थे, अनुभव कर रहे थे जो उन्होंने स्वाभाविक रूप से न कभी देखी थीं, न कभी सुनी थी, और न कभी अनुभव ही की थीं और न करनी ही चाहिए थीं।

काले कपड़े पहने वे तीनों व्यक्ति रेलिंग से लगे हुए बराबर बराबर खड़े थे; दो तो बिलकुल एक-दूसरे से सटे हुए थे और तीसरा छोटा व्यक्ति कुछ हटकर खड़ा था।

"अफसर!" उनमें से एक ने—एँडरसेन देख नहीं सके कि कौन से ने—आर्तनाद किया, "ईश्वर सब कुछ देखता है अफसर!" इस चीत्कार में ऐसी भयानक वेदना भरी हुई थी जैसी कि जीवन

में नितान्त निराश हो जाने पर मनुष्य के अन्तरतम से आप ही फूट पड़ती है।

आठ सैनिक आये और जल्दी-जल्दी घोड़ों पर से उतरे। उतरने में उनकी तलवारें और रकाबें उलझीं जिससे प्रत्यक्ष हो गया कि उनकी जल्दी चोर की जल्दी थी।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद सैनिक उन तीनों काली आकृतियों से कई गज़ दूर पर एक पंक्ति में खड़े हो गये और उन्होंने अपनी अपनी बन्दूकें सम्हाल लीं। ऐसा करने में एक सैनिक की टोपी ज़मीन पर पिघले बर्फ में गिरकर भीग गई, किन्तु उसने वह उठाकर वैसे ही सिर पर रख ली।

अफ़सर का घोड़ा अपने कान खड़े किये एक जगह खड़ा अब भी थिरक रहा था और शेष घोड़ों के कान भी प्रत्येक ध्वनि को सुनने के लिए सतर्क खड़े थे, किन्तु वे स्वयं निश्चल खड़े हुए उन तीनों काली मूर्तियों की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे, और उनके बड़े लम्बे-लम्बे सिर एक ओर को झुके हुए जैसे उनकी समझदारी और सहानुभूति प्रदर्शित करते थे।

"कम से कम इस लड़के की जान तो न लो।" एक और ध्वनि हवा को चीरती हुई चली गई—"पापी! बच्चे की जान क्यों लेता है?—इसने तेरा क्या बिगाड़ा है?"

"आइवानोव! मैंने जो आज्ञा दी है, उसका तुरन्त पालन करो।" अफसर दहाड़ पड़ा और उसमें पहली ध्वनि डूब गई। उसका मुख कत्थई पड़ गया।

और फिर एक भीषण और बर्बर दृश्य उपस्थित हुआ, हलके बालों और गुलाबी कानोंवाली वह छोटी काली आकृति अपनी अधकचरी आवाज़ में एक हृदय-विदारक चीत्कार करके एक ओर लुढ़क गई। किन्तु तत्काल ही दो-तीन सैनिकों ने उसे दबोच लिया। लड़का छूटने के लिए हाथ-पैर चलाने लगा। दो सैनिक उस पर और टूट पड़े।

"हाय—आ—य—आय!" लड़का चीख़ रहा था, "मुझे जाने दो—हाय—आ—य..!"

और आधे हलाल किये हुए, अधमरे सुअर के बच्चे की डीक की तरह लड़के की तेज़ चीख़ ने जैसे हवा का कलेजा चीर डाला!

फिर एकाएक वह चुप हो गया। अवश्य ही किसी ने उसे मार दिया होगा।

एक अप्रत्याशित और पीड़क चुप!

लड़का आगे ढकेला जा रहा था।

और फिर कान के पर्दे फाड़ती हुई एक धाँय!

ऐंडरसेन काँप कर चौंक पड़े! उन्होंने प्रत्यक्ष ही, किन्तु जैसे स्वप्न में, दो काली लाशों को गिरते देखा, देखी कुछ धुँधली-सी चमक, और फिर नीलाकाश में उड़ते हुए धुएँ की एक हलकी लीक! और देखा घोड़ों पर चढ़ते हुए उन सैनिकों को जो लाशों की ओर देखे बिना ही उस कीचड़ से भरी सड़क पर अपने घोड़ों की टापों और अपने अस्त्रों की खनक में मस्त फुदकते हुए चले जा रहे थे।

यह सब कुछ उन्होंने देखा अपनी ही आँखों से और सड़क के बीचोबीच खड़े होकर। उन्हें नहीं मालूम हुआ कि कब और क्यों मैं घास के पीछे से उठकर यहाँ सड़क पर आ खड़ा हुआ। शव की तरह श्वेत उनके मुख पर पसीने की धारें बह रही थीं। समस्त शरीर काँप रहा था। शोक उसमें समाहित होकर उन्हें जैसे नोंचे डालता था—निगले जाता था। यह अनुभूति कैसी थी, यह गैब्रील की समझ में कुछ नहीं आया—कुछ कुछ तीव्र ज्वर की तीक्ष्ण ज्वाला-सा, फिर भी उससे कहीं कराल और उत्तप्त !

दूर उस मोड़ के पीछे जब वे सैनिक सघन वन में ओझल हो गये, तब आसपास चारों ओर से लोग उस स्थल पर, जहाँ उन तीन प्राणियों को गोली मारी गई थी, दौड़ दौड़ कर इकट्ठे होने लगे, किंतु इससे पहले एक सूरत भी वहाँ नहीं दिखाई दी थी।

स्वच्छ वातावरण में हँसते हुए अस्पर्श्य अमल हिम-पुञ्ज पर रेलिंग के उस पार सड़क के किनारे वे तीनों शव पड़े हुए थे—दो पुरुषों के और एक लड़के का। लड़के की लम्बी सुकुमार गर्दन जैसे खिंची पड़ी थी। उसके बराबर जो पुरुष था, उसका मुख रक्त में उलटे पड़े होने के कारण दिखाई नहीं देता था। तीसरी लाश काली मूँछ-दाढ़ीवाले एक विशालकाय बलिष्ठ पुरुष की थी। वह पूरा फैला हुआ पड़ा था। रक्तरंजित हिम के एक बड़े भाग पर उसकी भुजायें फैली हुई थीं।

गोली खाई हुई वे तीनों लाशें श्वेत हिम पर कालिमा की तरह थीं, निश्चल, निस्पंद, निर्जीव !

भीड़ से भरी हुई उस तंग सड़क के किनारे पड़े हुए उन तीनों शवों को दूर से देखकर कोई भी उस आतंक को, जो उनकी क्रूर निर्जीवता में सन्निहित था, समझ नहीं सकता था।

और फिर उसी दिन रात को मास्टर गैब्रील ऐंडरसेन ने अपने कमरे में बैठकर कविता नहीं लिखी। खिड़की पर खड़े होकर वे धुँधले नीले आकाश में सुदूर स्थित मलिन चन्द्रमा को देखते देखते सोचने लगे—और उनके विचार शृङ्खलाहीन, उदासीन और भाराक्रांत थे, जैसे कि गगन का धुँधलापन ही बादल बनकर उनके मस्तिष्क में समा गया हो।

उस उदास चाँदनी में उन्हें अंधकारमय रेलिंग, वृक्षों और निर्जन उपवन की रूप-रेखायें अस्पष्ट-सी दिखाई दे रही थीं। उन्हें लगा जैसे वे उन तीनों शवों को देख रहे हैं। उस सुनसान मौन खेत में जनहीन पथ के किनारे पड़े हुए वे शव अपनी निर्जीव श्वेत पथराई आँखों से दूर पर शीत से सिकुड़े हुए शशि को वैसे ही देख रहे थे—जैसे वह कवि अपने जीवित नेत्रों से।

"वह दिन अवश्य ही आयेगा," कवि ने कल्पना की, "जब मानव की मानव-द्वारा ही हत्या नितांत असंभव होगी। वह दिन भी अवश्य ही आयेगा जब वे सैनिक और अफ़सर, जिन्होंने इन तीन निरीह प्राणियों की हत्या की है, अपने पाप को

पहिचानेंगे और समझेंगे कि जिस बात के लिए उन्होंने इनकी जान ली है, वही स्वयं उनको भी इतनी ही प्यारी है, जितनी इन लोगों को थी !..... हाँ, वह दिन अवश्य अवश्य आयेगा... समझ भी आयगी..." और उनकी आँखें छलछला आईं, जिनमें म्लान चन्द्रमा ओझल हो गया।

मलिन और दृष्टिहीन नयनों से तीनों शवों को अब भी चाँद की ओर निहारते देखकर मास्टर के हृदय में सहानुभूति की एक टीस उठी, जो शीघ्र ही क्रोधाग्नि में परिवर्तित होकर उनके रोम-रोम से प्रज्वलित हो उठी ! किंतु गैब्रील ने अपने हृदय को सान्त्वना प्रदान की—"वे जानते नहीं कि वे क्या करते हैं।"

और मसीहा के इस प्राचीन पवित्र मंत्र ने जैसे तत्काल ही प्रस्तुत होकर ऐंडरसेन को अपने क्रोध और क्षोभ को दूर कर डालने के लिए बल प्रदान किया।

(२)

वसंत बीत चला था, पर दिवस वैसा ही स्वच्छ और प्रखर था। भीगी हुई धरती की सुवासित साँसों में अभी भी वसंत खिल रहा था। पिघलती हुई हिम-राशि में से जहाँ-तहाँ निर्मल शीतल जल की धारायें बह रही थीं। हरियाली से ढकी हुई वृक्षों की डालियाँ झुक-झुक कर झूम-झूम पड़ती थीं। मीलों तक चारों ओर विस्तृत निरभ्र प्रदेश ही दृष्टिगोचर होता था।

किंतु वासन्ती दिवस की-सी उत्फुल्लता और निर्मलता आज

ग्राम के वातावरण में नहीं थीं—वे वहाँ से बहुत दूर निर्जन खेतों और सुनसान पर्वतों में जाकर रम गई थीं।

भय, आतङ्क और विवशता से घुटा हुआ गाँव का बोझिल वायुमंडल रात के डरावने सपने की तरह था। सड़क पर मैले, उदास और कुछ खोए-से लोगों की एक भीड़ के पास खड़े हुए ऐंडरसेन गर्दन उचका-उचका कर सात किसानों को कोड़े लगने की तैयारियाँ देख रहे थे।

पिछले वर्ष में वे खड़े थे और उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था—अपनी आँखों पर कि उनके सम्मुख वही मनुष्य खड़े हैं, जिन्हें वह इतने दिनों से अच्छी तरह जानते और पहिचानते थे। उस लज्जाजनक, भयानक, वीभत्स और नाशहीन कुकर्म से जो उनके साथ तत्काल ही किया जानेवाला था, वे सात निरीह प्राणी समस्त संसार से पेड़ से डाली की तरह जैसे बिलग कर दिये गये थे और इसी कारण वे गैब्रील ऐंडरसेन की तरह अनुभव नहीं कर सकते थे, सोच नहीं सकते थे। और ठीक इसी प्रकार तो ऐंडरसेन भी उन किसानों की भावनाओं को न समझ सकते थे और न अनुभव ही कर सकते थे। उनके चारों ओर सैनिक अपने अपने विशाल घोड़ों पर पूर्ण आत्म-विश्वास और गौरव से आसीन इधर-उधर थिरक रहे थे। विद्वानों के-से उन अश्वों के बड़े-बड़े मस्तक झूम रहे थे और वे रंग-बिरंगी काठी में कसे हुए थे; उनके मुख बड़ी शान से कभी इधर, कभी उधर मुड़ जाते थे जैसे वे गैब्रील ऐंडरसेन की अकर्मण्यता का उपहास कर रहे

हो—उनके प्रति अपनी घृणा प्रकट कर रहे हों—धिक्कार रहे हों, हाँ, और अकर्मण्यता ही तो, क्योंकि अभी तनिक-सी देर में उनके देखते-देखते ही उन किसानों की खाल उधेड़ी जायगी रक्त में लथपथ वे चीत्कार करेंगे—भीषण आर्त्तनाद !...और मास्टर मानवता के इस अपमान को, इस अमानुषिक अत्याचार को चुप-चुप खड़े देखा करेंगे, बिना हिले-डुले भी। वे कुछ भी नहीं करेंगे: करने का साहस ही न होगा ! और ऐंडरसेन को भी ऐसा ही लगा; यह भावना उनके अंतर में समा गई और उन्हें जैसे जड़ बना दिया, उनकी सज्ञा जैसे ठिठुर गई, असह लज्जा ने उनका मुख जैसे दो बर्फ के टुकड़ों के बीच में दबा दिया, जहाँ से वे सब कुछ देख तो सकते थे, पर न हिल सकते थे, न चीख सकते थे, न कराह ही सकते थे।

सैनिकों ने एक किसान को पकड़ा। गैब्रील को उसकी आँखों में कुछ विचित्र दीनता और निराशा-सी भरी दिखलाई दी। उनके होंठ हिले तो, पर उनमें से एक फूटा स्वर भी नहीं निकला। पागल आदमी की आँखों की तरह उनकी आँखों में एक तेज़ चमक थी। इस दशा से यह स्पष्ट था कि अब मास्टर साहब कुछ भी सोचने-समझने के योग्य नहीं रह गये थे।

वह किसान उलटा करके बर्फ पर गिरा दिया गया, पर ऐंडर-सेन का जैसे जी हलका हुआ; क्योंकि किसान के मुख पर एकदम अक़्लमदी और एकदम पागलपन की जो भयावह विकरालता थी, उसे वह सह नहीं सकते थे। अब तो उन्हें किसान की आग

बरसाती लाल-लाल आँखों की जगह उसकी नङ्गी पीठ चमक रही थी—और चमक रही थी घोर वज्रता और निपट निर्लज्जता से भरी हुई पशुता—अमानुषिकता !

लाल टोपी पहने लाल मुँह का एक लम्बा-तगड़ा सैनिक आगे बढ़ा और किसान के नंगे शरीर को जैसे बड़ी प्रसन्नता से घूर कर स्पष्ट ध्वनि में चिल्लाया—"अच्छा तो फिर इसे ईश्वर का वरदान मिलना चाहिए !"

ऐंडरसेन को अब न सैनिक, न आकाश, न घोड़े और न भीड़ ही—जैसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। अब वे न शीत से गले जा रहे थे, और न शर्म से। भय का भी कहीं पता न था। न उन्हें हवा में गूंजती हुई कोड़े की फटकार सुनाई पड़ती थी, और न किसान की दर्दभरी हूक और दुराशाभरी चीत्कार! उन्हें तो दिखाई दे रही थी केवल एक मनुष्य की प्रतिपल सूजती हुई नङ्गी पीठ जिस पर कोड़ों की नीली और सफेद धर्मे उछली हुई थीं। और धीरे धीरे वह नङ्गी पीठ इतनी विकृत हो गई कि यह भी नहीं मालूम होता था कि वह मानव-शरीर का ही कोई अंग है। उसमें से खून के फव्वारे फूट-फूट कर पिघले हुए सफेद बर्फ पर नदियों की तरह बहने लगे !

"जब यह आदमी उठकर हम सब लोगों को देखेगा जिन्होंने इसकी पीठ को उधड़ते और खून का एक लोथड़ामात्र बनते हुए चुप-चाप टुकुर-टुकुर खड़े देखा किया, तब !—उस क्षण ?" गैब्रील ने सोचा और उनकी आत्मा को आतंक ने धर दबोचा। उनकी आँखे मिच गई।

जब एंडरसन ने आँखें खोलीं, तो देखा कि वर्दी पहने और लाल टोप लगाये चार सैनिकों ने एक दूसरे किसान को उसी तरह पेट के बल बर्फ पर गिरा दिया, उसकी पीठ नङ्गी की उसी निर्लज्जता से—भयानकता से—कठोरता से—और फिर वही उपेक्षा से भरा मानवता का उपहास करता हुआ पाशविक—पीड़क—दुर्दान्त दृश्य !

फिर इसी तरह से तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, ...और सातवाँ भी... .उफ !

काँपते और लड़खड़ाते अपनी गर्दन ऊँची किये गेब्रील एंडरसेन अब भी उस पिघलते गीले बर्फ पर खड़े हुए थे ! मुँह से बोली नहीं निकलती थी। शरीर से पसीने की धारें बहने लगीं ! शर्म के मारे वह पानी-पानी हुए जा रहे थे। उनकी समस्त सेना ही जैसे ग्लानिमय होगई चुपचाप अनदेखे भाग जाने की बात सोचकर..... 'इस डर से कि कहीं वे सैनिक मुझे देख न लें, और फिर पकड़ कर बर्फ पर उलटा डाल दें और नङ्गा करके कोड़ों से मेरी पीठ उधेड़ दें—रक्त और मांस का निरा लोथड़ा बना दें......ऐसा ही जैसा मैंने अभी अभी देखा है.. .. उफ !'

भीड़ छटी। सैनिक इकट्ठे हुए। घोड़ों के गर्वीले मस्तक झूम उठे ! कोड़ों की कड़कड़ाहट से हवा सिहर-सिहर उठी।

घोड़ों की टाप दूर होती चली गई और फिर दूरी में ही डूब गई।

और वहाँ रक्तरंजित हिम पर अपमानित मानवता के लोथड़े तड़प तड़प कर फड़फड़ाते रहे......पड़े पड़े सड़ते रहे !

और वहाँ गाँव में शोषित की हृदयविदारक चीत्कार, भयानक आर्त्तनाद और करुण क्रन्दन ने वासन्ती वायु का कलेजा चीर डाला!

टाउनहाल की सीढ़ियों पर ऐंडरसेन अब पाँच व्यक्तियों के मुख देख रहे हैं—वही मानव मुख जिनका अपमान किया जा चुका था!

उन मुखों की ओर से तुरन्त ही अपनी आँखें फेरकर मास्टर साहब ने सोचा— यह सब देख लेने के बाद मनुष्य को मर जाना चाहिए!'

(३)

पन्द्रह सैनिक, एक हवलदार और एक नवयुवक अफ़सर— कुल मिलाकर सत्रह लोग थे।

अलाव जल रहा था और अफ़सर उसके सन्मुख लेटा हुआ जलती लपटों को देख रहा था। सैनिक लोग गाड़ी में रखे हुए अस्त्रों से कुछ खटपट कर रहे थे। काली और गीली धरती पर उनकी ख़ाकी आकृतियाँ चुपचाप इधर-उधर फिरती दिखाई देती थीं, किन्तु कभी कभी वे अलाव में लगे हुए लकड़ों से ठोकरें भी खा जाते थे।

ओवरकोट पहने और पीठ-पीछे अपना बेत घुमाते हुए गेब्रील ऐंडरसेन उन लोगों के समीप पहुँचे। हवलदार के बड़ी बड़ी मूँछें थीं और वह ख़ूब बलिष्ठ था। अलाव की ओर पीठ करके वह एकदम उठ खड़ा हुआ और ऐंडरसेन को देखकर

बोला, "तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ?" उसके स्वर में तेज़ी थी, किन्तु उससे यह भी स्पष्ट था कि जिस ज़िले को वे अपने दानवीय अत्याचारों से सर्वनाश और कराल काल के मुख में ग्रसित करा रहे थे, उसके प्रत्येक व्यक्ति से उन्हें भय लगता था।

"अफ़सर ! यह कोई नया आदमी है—इसे मैं नहीं जानता !" हवलदार ने कहा।

चुपचाप अफ़सर ने ऐंडरसेन को घूरा।

"अफ़सर," ऐंडरसेन ने बड़ी महीन और थकी-सी आवाज़ में कहा, "मेरा नाम माइकेलसन है। मैं यहाँ का एक व्यापारी आदमी हूँ और मैं काम से ही इस गाँव में जा रहा हूँ। मुझे डर था कि मुझे कहीं कोई कुछ का कुछ न समझ बैठे !"

"तब फिर तू यहाँ क्या सूँघता फिर रहा है ?" अफ़सर ने क्रोध में भरकर कहा और चल दिया।

"व्यापारी !" एक सैनिक नाक चढ़ाकर बोला, "इसकी तलाशी होनी चाहिए—इस व्यापारी की तलाशी होनी ही चाहिए, जिससे फिर रात को यह घूमता न फिरे। और मुँह में एक घूँसा ऐसा लगे कि सब घूमना भूल जाय !"

"अफ़सर ! इस आदमी पर तो मुझे शक होता है", हवलदार ने कहा, "क्यों न इसे गिरफ़्तार कर लिया जाय ?"

"नहीं !" अफ़सर ने जम्हाई लेते हुए आलस्यभरे स्वर में कहा, "जाने दो कम्बख़्त को......! इनसे तो मैं परेशान हो गया हूँ !"

ऐंडरसेन कुछ बोले नहीं, चुपचाप वहां खड़े रहे। आग की लपटों के उजाले में उनकी आँखों में एक विचित्र चमक आगई। और उस उजाले में चमकते हुए उनके ओवरकोट, बेंत और चश्मे के साथ साथ उनकी स्पष्ट, सुथरी और छोटी आकृति कुछ विचित्र-सी लग रही थी।

उन्हें छोड़कर सैनिक चले गये। कुछ देर तक मास्टर वहीं खड़े रहे, फिर मुड़े और चल दिये और शीघ्र ही अंधकार में ओझल हो गये।

रात बीत रही थी। वायु में शीतलता भर गई। झाड़ियों के ऊपरी भाग उस अँधेरी में अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगे। गैब्रील ऐंडरसेन फिर उस फौजी पड़ाव पर पहुँचे। किन्तु इस बार वे झुककर झाड़ियों के पीछे छिपते हुए चले। झाड़ियों को झुकाते हुए कुछ लोग उनके पीछे पीछे सावधानी और शांति से छाया की तरह मौन चले आ रहे थे। गैब्रील की दाहिनी ओर एक लम्बा व्यक्ति हाथ में रिवाल्वर लिये चल रहा था।

जहाँ वे खोज रहे थे, वहाँ नहीं, प्रत्युत सामने पहाड़ी पर एक सैनिक की आकृति की कुछ विकृत-सी रूप-रेखा दिखाई पड़ी। बुझते हुए अलाव के मंद प्रकाश से वह कुछ चमक उठी थी। ऐंडरसेन ने उस सैनिक को पहिचान लिया! वही तो था जिसने उनकी तलाशी लेने का प्रस्ताव किया था!

ऐंडरसेन का हृदय हिला नहीं, कोई खलबली उसमें नहीं हुई। सोए हुए व्यक्ति की तरह ही उनका मुख निश्चल और भावहीन बना रहा।

अलाव के चारों तरफ़ सैनिक पैर फैलाये पड़े सो रहे थे: केवल हवलदार ही घुटनों में सिर डाले बैठा ऊँघ रहा था।

एँडरसेन की दाहिनी ओरवाले उस लम्बे और पतले मनुष्य ने अपना रिवाल्वर ऊँचा किया और दाग़ दिया—आँखों को चौंधिया देनेवाली एक चमक—कानों के पर्दे फाड़ देनेवाली एक गरज!

एँडरसेन ने देखा! उस सैनिक ने अपने हाथ उठाये और फिर छाती पकड़कर बैठ गया।

चारों ओर से चटखती हुई चिनगारियाँ-सी चमकीं और एक तीव्र कड़क गूँज उठी।

हवलदार एकाएक उछला और सीधा अलाव में जा गिरा।

सैनिकों की मटैली आकृतियाँ प्रेतों की तरह चारों ओर अपने हाथ-पैर पटकती और ज़मीन पर गिर कर तड़पती हुई दिखाई दीं।

किसी अद्भुत आहत पक्षी की भाँति भयातुर वह नवयुवक अफ़सर एँडरसेन के पास से भाग कर निकला! एँडरसेन ने जैसे अन्यमनस्क हो अपना बेंत उठाया, परन्तु तत्काल ही पूरी शक्ति से उसके सिर में मारने लगे। प्रत्येक वार की 'कट' से हलकी और भद्दी आवाज़ होती। अफ़सर पहिए की तरह चक्कर खाता हुआ एक झाड़ी से जा टकराया और दूसरे ही वार के बाद दोनों हाथों से बच्चों की तरह सिर पकड़ कर बैठ गया। कोई दौड़ा

और उसने रिवाल्वर दाग़ दिया। ऐंडरसेन को लगा जैसे रिवाल्वर उसी के हाथ से छूटा। गठरी-सा गुड़मुड़ा कर अफ़सर सिर के बल ज़मीन पर लुढ़क गया। थोड़ी देर तक उसके पैर तड़फड़ाये, फिर वह एकाएक सिकुड़ कर निर्जीव हो रहा।

गोली चलनी बन्द होगई। सफ़ेद-सफ़ेद मुँहवाले काले भूत-से आदमी अँधेरे में सैनिकों की लाशों के पास जा जाकर उनके अस्त्र-शस्त्र हथियाने लगे।

शून्य और निर्निमेष दृष्टि से ऐंडरसेन यह सब कुछ खड़े-खड़े देखते रहे। जब सब काम समाप्त हो चुका, तब वे अलाव के पास पहुँचे और उन्होंने आग में जलते हुए हवलदार की टाँगें पकड़ कर बाहर खींचना चाहा परन्तु उसका शरीर बहुत भारी था, इसलिए उन्हें उसे जैसा का तैसा जलता हुआ छोड़ देना पड़ा।

(४)

टाउनहाल की सीढ़ियों पर चुपचाप बैठे हुए ऐंडरसेन कुछ सोच रहे थे। वे सोच रहे थे—'किस तरह मैंने झूठ बोलकर पन्द्रह आदमियों को धोखा दिया! कितना भयानक काम किया! किन्तु फिर भी मेरे हृदय में कोई ग्लानि, कोई लज्जा, कोई सन्ताप नहीं है। और यदि कविता करनेवाला स्कूल-मास्टर गैब्रील—मैं—आज छूट भी जाऊँ, तो फिर भी जाकर वही काम करूँगा।'

तत्पश्चात् गैब्रील ने अपनी आत्मा को टटोलना शुरू किया, किन्तु उनके विचार बोझिल और बिखरे हुए थे। न जाने क्यों निर्जीव और दृष्टिहीन नेत्रों से सुदूर स्थित उस मलिन चन्द्रमा

को वर्फ पर पड़े पड़े देखनेवाले उन तीनों शवों के प्रति ऐंडरसेन की अधिक सहानुभूति थी अपेक्षा उस मृत अफसर के प्रति जिसके उन्होंने दो बेंत बुरी तरह से जड़ दिये थे। परन्तु अपनी मृत्यु के विषय में उन्होंने कुछ नहीं सोचा। उन्हे लगा जैसे समस्त जीवन बहुत-बहुत पहले ही समाप्त हो चुका हो। उनके अन्दर से जैसे कुछ मर कर पहले ही निकल गया हो और वे उससे अब रहित थे और उसके विषय में अब उन्हें सोचना भी नहीं चाहिए इसी लिए।

और जब उन लोगो ने आकर ऐंडरसेन का कंधा पकड़ झकझोर डाला, उन्हें उठाया, और उस खेत में होकर ले चले जहाँ बन्दगोभी के ठूंठ अपना सिर उठाये खड़े थे, तब भी वह एक बात तक न सोच सके।

सड़क पर ले जाकर रेलिंग के सहारे वे एक लोहे की छड़ से बाँध दिये गये। उन्होंने अपना चश्मा ठीक किया, हाथ पीछे किये और अपने सुथरे तथा सुगठित व्यक्तित्व को उभार कर वे एक ओर तनिक गर्दन झुकाकर खड़े हो गये।

अन्तिम क्षण में उन्होंने अपने सन्मुख दृष्टि फेरी और देखा कि कई राइफलें उनके सिर, छाती, और पेट की ओर तनी हुई हैं, सैनिकों के मुख मलिन थे और उनके होंठ काँप रहे थे।

एकाएक उन्होंने स्पष्ट देखा कि उन राइफलों में से उनके मस्तक की ओर सधी हुई एक राइफल झुक गई।

कल्पना और संज्ञा से परे कोई विचित्र-सी वस्तु,—जो इस

संसार की नहीं रही थी, न अब इस पृथ्वी की ही थी,—ऐंडरसेन के मस्तिष्क के आर-पार चली गई।

फिर वे तनकर खड़े होगये और सहज अभिमान में अपना सिर ऊँचा कर लिया।

उज्ज्वलता, शक्ति, और गर्व की एक बड़ी अस्पष्ट और विचित्र-सी भावना उनकी आत्मा में भर गई और फिर प्रत्येक वस्तु—सूर्य, आकाश, मनुष्य, खेत, मृत्यु—सब कुछ उन्हें तुच्छ, व्यर्थ, और विस्मृत-सा प्रतीत हुआ।

उनकी बाँईं आँख, छाती और पेट में गोलियाँ लगीं। चश्मा चूर चूर होगया। एक चीख़ निकली और चक्कर खाकर वे एक लोहे की छड़ पर मुँह के बल गिर पड़े।

उनकी दाहिनी आँख अब भी खुली हुई थी। छटपटाकर अपने हाथ फैला-फैलाकर, जैसे सहारे के लिए गिरते-गिरते उन्होंने ज़मीन पकड़नी चाही। खुश होकर अफसर उनकी ओर भागा और निर्ममता से उनकी गर्दन में रिवाल्वर घुसेड़कर दो बार गोली चलाई।

निर्जीव ऐंडरसेन का शरीर पृथ्वी पर फैल गया।

सैनिक शीघ्र ही चले गये।

किन्तु ऐंडरसेन पृथ्वी से चिपटे पड़े रहे। उनके बाँयें हाथ की तर्जनी लगभग दस सेकिंड तक हिलती रही।

उसका प्रेमी

मैक्सिम गोर्की

एक बार मेरे एक परिचित ने मुझे यह कहानी सुनाई थी :—

कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो कुछ बदनाम होती हैं और जिनके चरित्र को लोग संदेह की दृष्टि से देखते हैं। जब मैं मास्को में पढ़ता था, तब एक ऐसी ही स्त्री के पड़ोस में रहता था। वह जाति की पोल थी और उसका नाम था टैरेसा। वह मज़बूत और लम्बी-चौड़ी थी। घनी काली भौंहों के नीचे उसकी काली काली आँखों में पशुता से भरी हुई एक चमक थी; उसका मुख भद्दा और खुरखुरा था; मानों छेनी से पत्थर पर तराशा हुआ हो। उसकी भारी आवाज़, गाड़ी हाँकनेवाले की-सी चाल और पुट्ठों का इतना अधिक बल, जो किसी मछुरहारी को ही शोभा देता, मेरे मन में भय उत्पन्न कर देते थे।

मैं सबसे ऊपरवाली छत पर रहता था। उसके घर का छज्जा मेरे ठीक सामने पड़ता था। जब जब मैं यह जानता कि वह अपने घर में है, तब तब अपने कमरे की किवाड़ें कभी खुली नहीं रखता था। लेकिन ऐसे अवसर वास्तव में बहुत कम होते थे, क्योंकि वह आँगन में या ज़ीने पर कहीं-न-कहीं मिल ही जाती थी और मुझे देखकर मुस्करा पड़ती थी। प्रायः मैंने उसे नशे में चूर,

चढ़ी हुई धुँधली मादक आँखें और बिखरे बाल लिये एक विशेष प्रकार की विकृत मुद्रा में देखा है और ऐसी ही अवस्था में वह मुझसे कहती थी—"कहो क्या हाल-चाल है, बाबू !" इसके बाद उसकी वह अशिष्ट हँसी उसके प्रति मेरी रोषपूर्ण ग्लानि को और भी भड़का देती थी।

इस तरह के मेल-मिलाप से बचने के लिए मैं अपना घर बदल देता, पर वह मेरा छोटा-सा कमरा बहुत अच्छा था। नीचे सड़क होने पर भी वह बिलकुल नीरव और शान्त था—कोलाहल से दूर उसकी खिड़की में से सुदूर क्षितिज तक आकाश और पृथ्वी का विस्तृत दृश्य दिखाई देता था। इसी से किसी न किसी तरह मैं अपना काम चलाये जाता था।

एक दिन सवेरे, जब मैं अपनी कोच पर पड़ा पड़ा क्लास में न जाने का कोई बहाना ढूंढ रहा था। मेरे कमरे का द्वार खुला, और उसकी देहरी पर टैरेसा की भारी और भद्दी आवाज़ गूंज उठी—"जीते रहो, ख़ुश रहो, बाबू !" "क्या चाहती हो ?" मैंने पूछा और दृष्टि उठाकर जो उसके मुख की ओर देखा तो उसमें बड़ी उलझन, विनय और प्रार्थना के-से भाव दिखाई दिये। उसे ऐसी मुद्रा में मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

"मैं आपको ज़रा-सी तकलीफ देना चाहती हूँ, मेहरबानी कीजिएगा ?"

मैं चुपचाप लेटा ही रहा। मैंने मन-ही-मन कहा—"ख़ूब! ......अच्छे रहे...डरते क्यों हो—साहस से काम लो!"

"मैं घर एक चिट्ठी भेजना चाहती हूँ; बस यही थोड़ा-सा काम है" वह बोली। स्वर में विनम्रता थी, प्रार्थना थी और कुछ लाज-सी भी।

'बस यही!'—मैंने सोचा और तुरन्त ही कोच पर से कूद कर मेज़ पर काग़ज़ और क़लम लेकर जा बैठा। फिर बोला,—"यहाँ आकर बैठ जाओ और जो लिखाना है, बोलती जाओ!"

वह दबे-पाँव आई और सतर्कता के साथ एक कुर्सी पर बैठ गई, फिर उसने मेरी ओर अपराधी की-सी दृष्टि से देखा।

"बताओ न, तुम्हें किसे पत्र लिखना है?"

"बोलेस्लाव काशपत को, जो वारसा रोड पर स्वेपज़ियाना के क़स्बे में रहता है......"

"तो जल्दी करो!"

"मेरे प्यारे बोलेस...मेरे प्रियतम...मेरे सच्चे प्रेमी... परमात्मा तुम्हारी रक्षा करे! ओ मेरे प्यारे...तूने इतने दिनों में अपनी प्यारी व्याकुल चिरैय्या टैरेसा की ख़बर तक क्यों नहीं ली?........"

मेरी हँसी फूटते-फूटते रुकी—"प्यारी चिरैय्या!" पाँच फ़ीट से भी ऊँची, डेढ़-डेढ़ मन के हाथ और ऐसी काली कलूटी जैसे बेचारी चिरैय्या हमेशा किसी चिमनी में ही घोंसला बनाकर रही हो और ज़िंदगी में एक बार भी न नहाई हो! अपनी हँसी को जैसे-तैसे रोकते हुए मैंने कहा—"यह बुलास्ट कौन है?"

"बुलास्ट नहीं, बोलेस—ठीक तरह से बोलो बाबू—हाँ!"

मेरे ग़लत नाम लेने से वह जैसे नाराज़ होकर कहने लगी। फिर बोली, "मेरा प्रेमी है वह !"

"प्रेमी !"

"क्यों तुम्हें ताज्जुब होता है बाबू ? मैं—एक लड़की—मेरा एक प्रेमी नहीं हो सकता क्या ?"

वह ? एक लड़की ? अच्छा—ख़ूब !

"वाह, क्यों नहीं !" मैंने कहा, "सब कुछ सम्भव है। और क्या वह तुम्हें बहुत दिनों से प्यार करता है ?"

"छः बरस से !"

"ओहो !" मैंने मन मे कहा; फिर बोला, "ख़ैर, लाओ, तुम्हारी चिट्ठी तो पहले पूरी कर दूँ........"

मैं सच कहता हूँ कि उसके उस प्रेमी की जगह ले लेना मै आसानी से पसन्द करता, यदि उसकी प्रेयसी टैरेसा न होकर उससे कम कुछ और होती।

"आपकी इस मेहरबानी के लिए मै आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देती हूँ बाबू !" टैरेसा बहुत शिष्टता के साथ बोली, "मै भी शायद किसी दिन आपकी कोई सेवा कर सकूँगी। है न ?"

"नहीं; मैं तुम्हे धन्यवाद देता हूँ—पहले से ही।"

"फिर भी शायद आपके पाजामे या आपकी क़मीज़े फटें तो उन्हें सिलाने की ज़रूरत पड़े ?"

पेटीकोट पहने पशु-सी इस स्त्री की इस बात से मैं कुछ झेंप गया, किन्तु फिर तुरन्त ही तेज़ी के साथ मैंने उससे

कह दिया—"मुझे तुम्हारी किसी सेवा की कोई आवश्यकता नही है !"

यह सुनकर वह चुपचाप चली गई।

एक-दो सप्ताह और बीते। एक दिन शाम को मैं बहुत परेशान-सा अपनी खिड़की के सहारे बैठा हुआ सीटी बजा रहा था और सोच रहा था मस्त होने की कोई तरकीब। मेरा जी ऊब रहा था। मौसम अच्छा नहीं था। कमरे से बाहर निकलकर मैं जाना नही चाहता था और इसी से खीझकर मन ही मन तर्क-वितर्क करके स्वयं अपने जीवन का विश्लेषण करना मैंने शुरू कर दिया था। यह काम भी कुछ कम जी उकतानेवाला नही था, फिर भी इसके अतिरिक्त कुछ और करने को मन नहीं हुआ। उसी समय दरवाज़ा खुला। मैंने सोचा 'चलो अच्छा हुआ'—कोई अन्दर आया।

"ओह बाबू ! इस वक़्त कोई ज़रूरी काम तो नही कर रहे ?"

अरे, यह तो टैरेसा थी—उफ़ !

"नही तो। क्यों, क्या बात है ?"

"मुझे आपसे एक और चिट्ठी लिखानी थी......"

"बहुत अच्छा ! क्या बोलेस को ?"

"नहीं, इस बार उसकी तरफ से !"

"क्या—आ—आ ?"

"मै बड़ी बेवकूफ़ हूँ ! अपने लिए नही कह रही थी, बाबू—माफ़ करना मुझे ! एक अपने दोस्त के लिए...यानी...दोस्त...

दोस्त...तो नहीं, पर एक जान-पहचानवाले के लिए—वह एक आदमी है और उसकी भी एक मेरी जैसी प्रेमिका है। टैरेसा ही उसका भी नाम है। बस यही सारी बात है। क्या कृपा करके उस टैरेसा को पत्र लिख दोगे?"

मैंने उसकी ओर देखा। उसका मुख उद्विग्न था; उँगलियाँ काँप रही थी। पहले तो मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया—फिर मैंने अनुमान लगाया कि क्या बात हो सकती है।

"सुनो, न कोई बोलेसा है, न कोई टैरेसा—बिलकुल कोई नहीं। और अभी तक तुम मुझसे निरा झूठ बोलती रही हो। अब फिर मुझे कभी परेशान करने या छेड़ने मत आना। मैं तुमसे मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहता—समझी!" मैंने कहा।

"बाबू!" उसने कहना शुरू किया, लेकिन फिर अचानक ही चुप होकर हाथ हिलाती हुई वह दरवाज़े की तरफ गई और फिर बाहर निकल गई।

मुझे बड़ा बुरा-सा लगने लगा। मैंने सुना, उसके घर की किवाड़ें भी बड़े ज़ोर से बन्द हुई जिससे विदित हो गया कि वह बेचारी बहुत अप्रसन्न हो गई है......मैंने फिर सोचा और उसके पास जाकर उसे पत्र लिखाने के लिए बुला लाना निश्चय किया।

मैंने उसके कमरे में घुसकर इधर-उधर देखा। वह अपनी कोहनियों में सिर डाले मेज़ पर बैठी हुई थी।

"सुनो तो!" मैंने कहा।

हाँ तो जब मैं इस कहानी के इस स्थल पर आता हूँ, तब मुझे बड़ा डरावना और कुछ अजीब बुरा-सा लगने लगता है। ख़ैर, अच्छा...तो फिर मैंने कहा था कि "सुनो तो!"

वह अपनी जगह से उठ खड़ी हुई और अपनी चमकती हुई आँखें निकालकर मेरी तरफ़ बढ़ी और मेरे कंधों पर अपने दोनों हाथ रखकर भर्राई मोटी आवाज़ में फुसफुसाने लगी—

"अब सुनो! बात यों है कि न कोई बोलेसा है और न कोई टैरेसा ही। पर इससे आपको मतलब? क्या काग़ज़ के ऊपर क़लम घसीट देने में आपको बड़ी तकलीफ़ होती है? क्यों? और ओह आप भी तो कैसे सुन्दर हैं!......कोई भी तो नहीं है, न बोलेसा, न टैरेसा; बस, मैं ही हूँ, मैं ही! अब तो जान गये। बड़ा फ़ायदा हो गया न अब आपका!"

"क्षमा करो!" मैंने हतबुद्धि होकर कहा, "लेकिन यह सब तमाशा क्या है? तुम कहती हो कोई भी बोलेस नहीं है!"

"हाँ, ठीक तो कहती हूँ।"

"और न कोई टैरेसा है?"

"हाँ कोई और टैरेसा नहीं है। मैं ही टैरेसा हूँ।"

मेरी समझ में फिर भी कुछ न आया। मैंने अपनी दृष्टि उसके मुख पर गड़ा दी और यह जानने की कोशिश करने लगा कि हम दोनों में से कौन पागल है।

लेकिन वह फिर मेज़ के पास गई; कुछ ढूँढ़ा और मेरे पास लौटकर आहत स्वर में कहने लगी,—"अगर बोलेस को चिट्ठी

लिखने में आपको इतनी तकलीफ़ हुई थी, तो लीजिए यह रही वह चिट्ठी ! ले जाइए इसे ! मै किसी और से लिखा लूँगी !"

मैंने देखा उसके हाथ में वही पत्र था जो उसने मुझसे बोलेस के लिए लिखवाया था। उफ......!

"सुनो टैरेसा ! इन सब बातों का मतलब क्या है ? आख़िर जब यह पत्र मैंने तुम्हें लिखकर दे ही दिया था, तब तुमने इसे अभी तक भेजा क्यों नहीं, और किसी दूसरे से अब इसी को लिखाने क्यो जाओगी ?"

"कहाँ भेजती ?"

"क्यों—बोलेस के पास !"

"इस नाम का कोई आदमी नहीं है !"

अब भी मेरी समझ में कुछ न आया। झींककर लौट आने के सिवाय अब कुछ नहीं करना था। उसने मुझे फिर समझाया—

"क्या क्या है ?" उसने कहा। वह क्रोध में अब भी भरी थी।

"कहती तो हूं बोलेस नाम का कोई भी आदमी नहीं है, नहीं है," कहकर उसने अपनी बाहें फैलाई, जैसे वह स्वयं भी तो नहीं समझती कि ऐसा कोई आदमी क्यों नहीं है,—"पर मै चाहती हूँ कि वह होता.....क्या औरों की तरह मैं भी इन्सान नहीं हूँ ? हाँ, हाँ, मै जानती हूँ कि......फिर भी तो मैं नहीं समझती कि उसे पत्र लिखने से किसी का भी कुछ बिगड़ा है.... !"

"माफ़ करना,......किसे ?"

"बोलेस को ही तो !"

"पर उसका तो नाम-निशान भी नहीं है !"

"हाय ! हाय ! अरे नहीं है, तो क्या हुआ ! वह नहीं है, पर हो तो सकता है ! मै उसे चिट्ठी लिखती हूँ और मुझे लगता है कि जैसे वह है। और टैरेसा—यानी मैं और वह मुझे ज्वाब देता है. और फिर मैं उसे लिखती हूँ...... !"

मै समझ गया। और तब मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई क्लेश हुआ, खीझ हुई।

मेरे बराबर, मुझसे तीन गज़ से कम दूरी पर ही तो एक मानव प्राणी रहता है, जिसे प्यार करने को—दो मीठे बोल बोलने को—इस विशाल संसार में कोई नहीं है और जिसने अपने लिए एक प्रेमी की मधुर कल्पना कर ली है।

"अब देखो—आपने मेरे लिए एक पत्र बोलेस को लिख दिया और उसे मैंने एक और आदमी को दे दिया, जिसने पढ़कर मुझे सुना दिया। और जब उसने पढ़कर मुझे सुनाया, तब मैंने सुनते हुए यह कल्पना की कि सचमुच मेरा कोई बोलेस है। और मैंने आपसे कहा कि बोलेस की ओर से टैरेसा को एक चिट्ठी लिख दीजिए—अर्थात् मुझको। जब ऐसी चिट्ठी पढ़कर मुझे सुनाई जाती, तब तो मुझे पूरा पूरा विश्वास हो जाता कि बोलेस है, ज़रूर है ! इस प्रकार मेरे जीवन का बोझ बहुत कुछ हलका हो जाता है !"

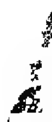
यह सुनकर मेरे मन ने कहा—"तुझे कोई अव्वल दर्जे का बेवकूफ समझेगा !"

उसके बाद से बराबर प्रत्येक सप्ताह में दो बार मैं एक पत्र बोलेस को टैरेसा की ओर से लिखता, और दूसरा टैरेसा के लिए बोलेस की ओर से। उसके उत्तर में.. वह उन पत्रों को बड़े ध्यान से सुनती थी, और रो-रो पड़ती थी। कभी कभी तो चीखने तक लगती थी—अपनी उसी मोटी फटी हुई-सी आवाज़ में। इस प्रकार काल्पनिक बोलेस से उसे सच्चे प्रेम-पत्र दिलवाकर आँसू बहाने में सहायता करने के बदले में टैरेसा मेरे फटे हुए मोज़ों, कमीज़ों तथा अन्य कपड़ों को सिल दिया करती थी।

इस कहानी के प्रारम्भ होने के तीन महीने बाद किसी अपराध के लिए सरकार ने उसे जेल में बंद कर दिया। और अब तक तो वह कभी की मर भी चुकी होगी।

मेरे परिचित सज्जन ने अपनी सिगरेट की राख झाड़ी और गंभीर होकर आकाश की ओर देखते हुए बात समाप्त की—

"भाई, बात यों है कि अपनी अच्छाइयों के चिथड़ों में लिपटे हुए हम लोग, जो संसार की प्रत्येक वस्तु को सामर्थ्य, संतोष, सुविधा और सम्पूर्णता से उत्पन्न अपनी परिस्थितियों के धुँधलेपन में से देखते हैं और अपने मन को झूठा बहलावा देते हैं कि हम निर्दोष हैं और कोई पाप कर ही नहीं सकते, इस बात को नहीं समझ सकते कि जीवन का जितना अधिक कड़ुवापन आदमी पीता है, फिर उतने ही अधिक मिठास के लिए वह तड़पता भी है!



'और तब सारी परिस्थिति अपनी समस्त क्रूरता और कुरूपता को लेकर हमारे सम्मुख आ खड़ी होती है। हम कहते हैं दलित वर्ग ! और मैं जानना चाहूँगा दलित वर्ग हैं कौन से ? प्रथम तो वे वही लोग हैं जो हमारी ही तरह हाड़-मास और रक्त के मानव हैं। युग-युग से हमें यह बात बतलाई जा रही है, और हम सचमुच सुनते भी हैं—किंतु ईश्वर ही जानता है कि सब कुछ कितना विकृत है ! अथवा मनुष्यता के ऊँचे-ऊँचे उपदेश सुनते सुनते हम बिलकुल पतित हो गये हैं ?

"वास्तविकता तो यह है कि हम भी तो गिरे हुए लोग हैं। और जहाँ तक मैं समझता हूँ हम लोग अपने बड़प्पन और अपने-में-ही-पूर्ण के भ्रम में विश्वास के गहरे गर्त में पड़े हुए हैं। पर अब बस हो चुकी है। यह सब इतना पुराना हो चुका है—जितनी पुरानी पृथ्वी है—कि इसकी चर्चा करना भी हमारे लिए शर्म की बात है !—बहुत पुराना—हाँ—वास्तव में—यही तो है न !"

लाल झंडी

गार्शिन

सेमीयोन आइवानोव रेल का एक ख़लासी था।

उसका काम था रेल की लाइन की देख-भाल करना। दो स्टेशनों के बीच में उसकी झोपड़ी थी—एक स्टेशन से दस वर्स्ट* और दूसरे से बारह वर्स्ट दूर। इसके अतिरिक्त कोई चार वर्स्ट की दूरी पर एक कॉटन-मिल थी, जो गत वर्ष ही नई-नई खुली थी और जिसकी काली-काली चिमनी जंगल के पीछे उठी हुई दिखाई देती थी।

सेमीयोन की झोपड़ी के पास-पड़ोस में कुछ दूर पर अन्य ख़लासियों की झोपड़ियाँ थीं।

सेमीयोन आइवानोव की तन्दुरुस्ती बिलकुल बिगड़ चुकी थी। नौ बरस पहले उसने लड़ाई में एक अफ़सर की नौकरी की थी और लड़ाई भर उसके साथ रहा था। गर्मी, सर्दी, धूप और पानी में चालीस-चालीस पचास-पचास वर्स्ट एक-एक दिन में उसे ज़बर्दस्ती चलना पड़ता था। उसके शरीर को सूरज के ताप ने जैसे भून डाला था, कड़ी सर्दी ने ठिठुरा दिया था और भूख ने

* रूसी मील—अँगरेज़ी मील का दो-तिहाई-लगभग १,१७४ गज़ लम्बा।

खा डाला था। गोलियाँ उसके कानों के पास सनसनाती हुई निकल जाती थीं, पर ईश्वर की कृपा से उसके कभी एक गोली भी नहीं लगी।

सेमीयोन के अफ़सर का सेना-दल एक बार गोलाबारी के मोर्चे पर पहुँच गया था। तुर्की सेना से लड़ाई होते हुए पूरा एक सप्ताह बीत चुका था। दोनों सेनाओं के बीच में सिर्फ एक सूखी हुई नदी की गहरी, ऊबड़-खाबड़ और फटी-फटी-सी तली थी, और सुबह से शाम तक लगातार गोलाबारी होती थी! दिन में तीन बार सेमीयोन को अपने अफ़सर के लिए गरम-गरम चाय और खाना तम्बू की रसोई से खाई में ले जाना पड़ता था। गोलियाँ उसके चारों तरफ़ सनसनाती थीं और चट्टानों से टकरा-टकरा कर गरज-गरज पड़ती थीं। सेमीयोन कभी कभी डरकर चीख़ पड़ता था, लेकिन अपनी राह पर बराबर चला जाता था। अफ़सर लोग उससे बहुत ख़ुश रहते थे, क्योंकि वह उनको हमेशा गरम-गरम चाय पिलाता था।

लड़ाई से सेमीयोन जब घर लौटा, तब उसका कोई अंग भंग तो नहीं हुआ था, लेकिन गठिया की बीमारी से उसके हाथ-पैर मारे गये थे। उसके बाद उस बिचारे को कुछ कम दुःख नहीं झेलने पड़े। घर आते ही उसे पता चला कि उसका वृद्ध पिता और छोटा चार साल का लड़का मर चुके हैं। अकेली उसकी पत्नी ही उसका साथ देने को रह गई। वे कुछ काम-काज नहीं कर सके। गठिया की वजह से सेमीयोन के हाथ-पैर हल जोतने योग्य

नहीं रह गये थे। इसलिए अपना गाँव छोड़कर उन दोनों को अपनी रोज़ी कमाने के लिए परदेश निकलना पड़ा।

रास्ते में वे लोग कुछ दिनों तक खैरसन और दोन्शखिना में ठहरे. लेकिन दोनों जगहों में से कहीं एक जगह भी उन्हें काम नहीं मिला। तब उसकी पत्नी तो नौकरी करने चली गई, लेकिन वह स्वयं यात्रा ही करता रहा।

एक बार सेमीयोन को ऐंजिन पर बैठने का अवसर मिला। एक स्टेशन पर उसे वहाँ के स्टेशन-मास्टर का चेहरा कुछ पहचाना-सा मालूम पड़ा। सेमीयोन ने स्टेशन-मास्टर की तरफ़ देखा और स्टेशन-मास्टर ने सेमीयोन की तरफ़. और तुरंत ही दोनों एक-दूसरे को पहचान गये। सेमीयोन के सेना-दल में ही वह भी एक अफ़सर रहा था।

"तुम आइवानोव हो न?" स्टेशन-मास्टर ने पूछा।

"हाँ, सरकार।"

"यहाँ कैसे आये?"

सेमीयोन ने अपनी सारी कहानी कह सुनाई।

"तो अब जा कहाँ रहे हो?"

"सरकार, मैं आपको बता नहीं सकता!"

" 'आपको बता नहीं सकता'—इसका मतलब? तू अब बड़ा पाजी हो गया लगता है!"

"मतलब यही, जो सरकार से मैंने कहा। मैं कहाँ जाऊँ?—मैं ख़ुद नहीं जानता। मेरे लिए कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। काम ही ढूँढ़ता फिरता हूँ, सरकार।"

स्टेशन मास्टर ने क्षण भर समीयोन की ओर देखा, फिर क्षण भर सोचकर कहने लगा, "अच्छा तो देखो दोस्त, तुम यहीं स्टेशन पर रुक जाओ कुछ दिनों के लिए। ब्याह तो कर लिया है न? वह कहाँ है?"

"हाँ, सरकार, ब्याह तो कर लिया है। वह ने कुर्स्क में एक सौदागर के यहाँ नौकरी कर ली है।"

"अच्छा, तो फिर उसे चिट्ठी लिखकर यहाँ बुला ले। मैं उसके लिए एक 'फ़्री पास' दे दूंगा। यहाँ एक ख़लासी के लिए जगह खाली है। मैं बड़े साहब से तेरी सिफ़ारिश कर दूँगा।"

"सरकार, मैं आपके बड़े गुन गाऊँगा"—समीयोन ने कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए कहा।

सेमीयोन स्टेशन पर ठहर गया। स्टेशन-मास्टर के लिए ईंधन काटकर लाने लगा, उनके घर की झाड़ा-बुहारी करने लगा और खाना बनाने में उनके रसोइये को भी मदद देने लगा। इसके सिवाय वह स्टेशन के प्लैटफ़ार्म पर भी झाड़ू लगाता था।

एक पखवारे के अन्दर उसकी पत्नी कुर्स्क से लौट आई। उसके साथ ट्राली में बैठकर सेमीयोन अपनी झोपड़ी में पहुँचा। झोपड़ी नई बनी हुई थी उसमें काफ़ी गरक थी और जलाने के लिए बहुत-सा ईंधन भी। वहाँ रहनेवाले किसी पहले ख़लासी की एक छोटी-सी बगिया झोपड़ी के पीछे थी। लाइन के इधर-उधर कोई आधे बीघा जुती हुई ज़मीन थी। सेमीयोन खुश हो

उठा। वह कुछ खेती करने, एक गाय और एक घोड़ा ख़रीदने की बात सोचने लगा।

सेमीयोन को लाल झंडी, हरी झंडी, लालटैन, भोंपू, हथौड़ा, पेचकश, कुदाली, फावड़ा, खरहरा, ढिबरियाँ और कीलें आदि सभी ज़रूरी सामान दे दिया गया। इसके सिवाय उसे दो किताबें भी दी गईं—रेलवे के क़ानून-क़ायदे और टाइम-टेबिल। पहली रात को तो सेमीयोन सो भी नहीं सका। रात भर बैठा टाइम-टेबिल रटता रहा। रेल आने से दो घंटे पहले जाकर वह अपने सैक्शन की लाइन जाँच आता था, और फिर अपनी झोपड़ी के सामने बेंच पर बैठा-बैठा देखता कि लाइनें हिल तो नहीं रही हैं, उनमें से गाड़ी आने की आवाज़ तो नहीं आ रही है। यहाँ तक कि उसने रेलवे के कायदे-क़ानून भी सब रट डाले, हालाँकि वह मुश्किल से एक-एक अक्षर करके ही एक-एक शब्द पढ़ पाता था।

गर्मी के दिन थे। काम भारी नहीं था। लाइन पर बर्फ़ थी ही नहीं जो हटानी पड़ती और गाड़ियाँ उस लाइन पर कम चलती थीं। सेमीयोन दिन में दो बार अपने सैक्शन भर में चक्कर लगा आता था। लाइन की ध्यान से देख-भाल करता था; जहाँ ढिबरियाँ ढीली होतीं, वहाँ उन्हें कस देता, लैविल ठीक कर देता, पानी के नल देख लेता और तब कहीं अपने घर लौटकर जाता। पर एक असुविधा थी—जो भी काम वह करना चाहता था, उसके लिए पहले से इंस्पेक्टर की अनुमति माँगनी पड़ती

थी इसमे मर्सीयोन और उसकी पत्नी दोनो का ही जी ऊबने लगा था।

दो महीने बीत गये, तब सेमीयोन ने अपने पड़ोसी खलासियों से जान-पहचान करनी शुरू की। उनमें से एक खलासी बहुत बूढ़ा था। रेलवे उसे बहुत दिनो से अलग करने का इरादा कर रही थी। वह अपनी झोपड़ी से शायद ही कभी निकलकर आता हो, वरना उसका सारा काम उसकी पत्नी ही करती रहती थी। दूसरा खलासी छरहरे बदन का जवान था। एक दिन सेमीयोन और वह लाइन पर ही घर लौटते हुए मिल गये। सेमीयोन ने अपना टोप उतारा और झुक कर अभिवादन किया और कहा—"पड़ोसी, ख़ुश रहो, जीते रहो!"

पड़ोसी ने कनखिओं से उसे देखा। "कहो, तुम तो मज़े में हो?" उसने उत्तर दिया और मुड़कर चलता बना।

इसके बाद उन दोनो की पत्नियाँ मिलीं। सेमीयोन की पत्नी अपना बहुत-सा समय अपनी पड़ोसिन के साथ ही बिताती थी, पर वह भी कम बोलती थी।

एक बार सेमीयोन ने उससे कहा, "तुम्हारे वे तो बहुत कम बातचीत करते हैं।"

पहले तो वह कुछ बोली नहीं, परन्तु फिर उत्तर दिया—"लेकिन वे क्या बातचीत करें? सबको अपने-अपने काम से मतलब! तुम भी अपना काम देखो—भगवान् तुम्हारा भला करे।"

फिर भी किसी न किसी तरह होते होते उन लोगों में घनिष्ठता

बढ़ गई। सेमीयोन लाइन देखने अब वाज़ीली के साथ जाता, कहीं किसी नल के पास बैठकर चुरट पीता और जीवन के विषय में बातें करता। वाज़ीली अधिकतर चुप बैठा सुनता रहता। सेमीयोन अपने गाँव की और लड़ाई की, जिसमें वह गया था, बातें करता।

"मैंने भी ज़िन्दगी में कुछ कम दुःख नहीं उठाये हैं" वह कहता, "और अभी मेरी उमर ही कितनी है। भगवान् ने मुझे कोई सुख नहीं दिया, पर वह जो भी दे, सो ठीक है—यह बात है दोस्त वाज़ीली स्टेपानिख।"

वाज़ीली ने अपनी चुरट की राख झाड़ी, उठकर खड़ा हो गया, और तब कहा; "हमारा भाग्य कुछ नहीं करता—करते हैं ये आदमी। आदमी से बढ़कर क्रूर जानवर इस दुनिया में दूसरा नहीं है। भेड़िया भेड़िया को नहीं खाता, लेकिन आदमी आदमी को निगल जाता है!"

"सो तो न कहो दोस्त! भेड़िया भी भेड़िया को खा डालता है।"

"यह तो एक बात कही मैंने। फिर भी आदमी से निर्दयी और कोई नहीं है। उसके लालच और बदमाशी की वजह से ही आज दुनिया में जीना दूभर हो उठा है! हर आदमी तुम्हे नोच-खसोट कर हड़प कर जाना चाहता है!"

सेमीयोन ने थोड़ा-सा विचार किया, फिर कहा, "भाई, मैं कुछ कह नहीं सकता, पर हो सकता है कि जो तुम कहते हो, वही ठीक हो—और शायद यही भगवान् की इच्छा है!"

"और शायद" वाज़ीली ने उत्तर दिया, "तुमसे बात करना अपना वक्त बर्बाद करना है। जो भी बुराई होती है, सो सब भगवान् करता है और बस यही सोचकर बैठे-बैठे चुपचाप दुख झेलने का मतलब है कि तुम आदमी नहीं, जानवर हो! मैं तो यही कहता हूँ।"

इतना कहकर वाज़ीली एकदम उठ खड़ा हुआ और बिना अभिवादन किये ही चल दिया।

सेमीयोन भी उठ खड़ा हुआ।

"पड़ोसी—!" उसने पुकारा, "तुम नाराज़ क्यों हो गये ?"

लेकिन पड़ोसी ने मुड़कर देखा तक नहीं। वह चला ही गया।

जब तक वह मोड़ पर जाकर दृष्टि से ओझल नहीं होगया, तब तक सेमीयोन उसकी तरफ देखता ही रहा। घर लौटकर उसने अपनी पत्नी से कहा, "अरीना, पड़ोसी शैतान है, आदमी नहीं।"

तब भी सेमीयोन और वाज़ीली में आपस में लड़ाई नहीं हुई। वे फिर मिले और उसी प्रसङ्ग पर बात करने लगे।

"अरे दोस्त, आदमी की ही वजह से तो हम झोपड़ियों में पड़े हुए हैं!" वाज़ीली ने कहा।

"अगर पड़े हुए हैं तो क्या हुआ ? कोई बहुत बुरी तो नहीं हैं वे। तुम उनमें रह सकते हो।"

"रह सकते हैं, सचमुच! वाह, क्या कहते हो!······

तुम इतने बूढ़े हो गये, पर तुमने सीखा कुछ नहीं—तुमने दुनिया देखी बहुत है, लेकिन समझी नहीं है। यहाँ या कहीं भी झोपड़ी में रहनेवालों की ज़िंदगी भी क्या कोई ज़िंदगी है? मनुष्य-भक्षी तुम्हें निगले जा रहे हैं—वे तुम्हारा सारा ख़ून चूसे ले रहे हैं, और जब तुम बूढ़े हो जाओगे, तब वे तुम्हें दूध में मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देंगे! समझे—तुम्हें क्या मिलता है?"

"बहुत तो नहीं, वाज़ीली स्टेपानिच—यही बारह रूबल!"

"और मुझे, साढ़े तेरह रूबल! क्यों? क़ायदे से कम्पनी को हमें पन्द्रह रूबल महीना देना चाहिए और उसके साथ-साथ रोशनी तथा ईंधन भी। यह कौन तय करता है कि तुम्हें बारह रूबल दिये जायँ और मुझे साढ़े तेरह? अपनी अक़्ल से पूछो न! और तुम कहते हो कि आदमी इतने में गुज़र कर सकता है? लेकिन यह सवाल डेढ़ या दो या तीन रूबल का नहीं है,—अगर वे हमें पन्द्रह रूबल भी दें, तो भी बात वही है। समझे! मैं पार-साल स्टेशन पर था। कम्पनी का डायरेक्टर यहाँ से गुज़रा था। मैंने उसे देखा। यह मेरा सौभाग्य था। उसका डिब्बा बिलकुल अलग था—ख़ास तौर पर बना हुआ। अपने डिब्बे से निकलकर वह प्लैटफ़ार्म पर खड़ा हो गया……मैं अब यहाँ बहुत दिन नहीं रुकूँगा—कहीं न कहीं चल दूँगा—जहाँ भी मेरे सींग समायेंगे।

"लेकिन स्टेपानिच, तुम जाओगे कहाँ? यह सब झगड़े छोड़ो। यहाँ तुम्हारे पास एक घर है, चैन है, थोड़ी-सी ज़मीन है। फिर तुम्हारी पत्नी अलग कमाती है।"

"ज़मीन ! ज़रा तुम उसे एक नज़र देख लो—उसमें कुछ भी तो नहीं है—घास का एक तिनका तक नहीं। मैंने वसंत में उसमें कुछ गोभी लगाई थी; लेकिन तभी इंस्पेक्टर आ धमका। पूछने लगा—'यह क्या है ? तुमने इसकी खबर क्यों नहीं की ? बिना इजाज़त लिये तुमने यह क्यों लगाई ? इन्हें अभी उखेड़ कर फेंको—अभी-अभी—जड़ समेत !' वह नशे में चूर था। वैसे शायद वह कुछ न कहता; पर इस बार उसे कुछ धत् सवार थी। तीन रूबल जुर्माना भी कर दिया ऊपर से......!"

इतना कहकर वाज़ीली कुछ देर चुप हो रहा और अपने चुरुट का दम खींचा, तब फिर धीमे स्वर में कहा—"ज़रा कुछ और करता, तो मैं उसे मज़ा चखा देता !"

"तुम्हारा मिजाज़ बड़ा गरम है !"

"नहीं, मेरा मिजाज़ गरम नहीं है। हाँ, यह ज़रूर है कि मैं सब बात सही-सही कह देता हूँ और कुछ सोचता-विचारता भी हूँ। हाँ, मैं अब भी उसे इसका मज़ा चखा दूंगा। मैं बड़े साहब से शिकायत करूँगा। तब देखना !"

और इसके बाद वाज़ीली ने बड़े साहब से शिकायत कर भी दी !

एक बार बड़े साहब लाइन का मुआयना करने आये। तीन दिन बाद सेंट पीटर्सबर्ग से कुछ बड़े आदमी उसी लाइन से आनेवाले थे। वे किसी मामले की जाँच कर रहे थे, इसलिए यह ज़रूरी था कि सब काम चौकस रखा जाय।

तो फिर सारी लाइन की लैविल ठीक की गई। उसके सिली-परों की जाँच हुई। उसके किनारे पत्थर के टुकड़े डाले गये। ढिबरियाँ कसी गईं। तार और बिजली के खम्भे रँगे गये। लैविल-क्रासिंगों पर पीली बजरी डलवा दी गई। पड़ोसिन बुढ़िया अपने उस बूढ़े पति को भी जो घर पर ही पड़ा रहता था, बाहर सफाई करने के लिए निकाल लाई!

सेमीयोन सारे सप्ताह व्यस्त रहा। अपनी सब चीज़े उसने ठीक कीं, वर्दी सँभाली, पेटी की पीतल की प्लेट इतनी साफ़ की कि वह चमकने लगी।

वाज़ीली ने भी कड़ा परिश्रम किया।

बड़े साहब ट्रॉली पर आये जिसका हैंडिल चार आदमी सँभाले हुए थे और छः आदमी पटरी पर दौड़-दौड़ कर उसे चला रहे थे। ट्रॉली बीस वर्स्ट प्रतिघंटे की रफ़्तार से चल रही थी; लेकिन उसके पहिए खनखना रहे थे। वह सेमीयोन की झोपड़ी के सामने पहुँची, और वह झपटकर बाहर आया और सैनिक-रीति से अभिवादन किया। उसका सारा काम दुरुस्त मालूम होता था।

"तुम क्या यहाँ बहुत बरसों से हो?"—बड़े साहब ने पूछा।

"सरकार, इसी साल दूसरी मई को आया हूँ।"

"अच्छा ठीक है।.....और १६४ नं० की झोपड़ी में कौन रहता है?"

ट्रैफिक इंस्पैक्टर ने, जो बड़े साहब के साथ ही ट्रॉली पर दौरा कर रहे थे, उत्तर दिया—"वाज़ीली स्पीदोव।"

"स्मीदोव, स्मीदोव······ओह! क्या यह वही आदमी तो नहीं है जिसकी शिकायत पारसाल तुमने की थी?"

"हाँ, वही।"

"अच्छा, तो चलो, उसी को देखा जाय अब!"

ट्राली रेल की पटरी पर दौड़ने लगी। सेमीयोन देखता रहा, पर उसने सोचा—'हो न हो आज 'पड़ोसी' से और इनमें कुछ न कुछ झगड़ा होगा ज़रूर!'

दो घंटे बाद सेमीयोन अपने सैक्शन में चक्कर लगाने निकला। उसने देखा कि मोड़ के पास से कोई आदमी पटरी के किनारे-किनारे चला आ रहा है। उसके सिर पर कुछ सफेदी-सी दिखाई दे रही है।

सेमीयोन ने और अधिक ध्यानपूर्वक देखा—यह तो वासीली है। उसके हाथ में एक डंडा है, कंधे पर एक बंडल-सा रखा है और गालों पर रूमाल की पट्टी बँधी है।

"कहाँ जा रहे हो?"—सेमीयोन ने चीखकर पूछा।

वासीली बिलकुल समीप आ गया। उसका मुँह उतरा हुआ था और बिलकुल सफेद पड़ रहा था। उसकी आँखें अंगारे-सी लाल थीं। गला रुँधा जा रहा था, वैसे ही उसने टूटे स्वर में कहा—"शहर—मास्को—बड़े दफ़्तर!"

"बड़े दफ़्तर? शिकायत करने के लिए, क्यों? वासीली स्टेपानिख जाने भी दो अब, भूल जाओ।"

"नहीं, भाई कैसे भूल जाऊँ! बहुत हो गया अब—बस!

देखना तुम अब! उसने मेरे मुँह पर चोट की और मेरा खून गिरा दिया! जब तक मैं ज़िंदा हूँ, भूल नहीं सकता उसे। मैं उसे यों ही छोड़ नहीं दूँगा अब!"

सेमीयोन ने कार्ज़ीली का हाथ पकड़ लिया—"जाने भी दो अब स्टेपानिस्व! मैं तुम्हें नेक सलाह दे रहा हूँ। तुम्हारी भलाई की बात कह रहा हूँ। तुम्हारे करने से कुछ नहीं होगा·····!"

"कुछ नहीं होगा! मैं जानता हूँ कुछ नहीं होगा! तुम भाग्य की बात जो कहते थे, सो ठीक है। यह अच्छा होगा कि मैं शिकायत न करूँ; लेकिन न्याय के लिए आदमी को पुकारना चाहिए!"

"पर मुझे यह तो बतलाओ कि आख़िर यह सब हुआ कैसे?"

"कैसे? उसने सब चीज़ों का मुआयना किया, फिर ट्रॉली से उतरकर मेरे घर में घुस पड़ा। मैं तो पहले से ही जानता था कि वह कड़ाई करेगा, इसलिए मैंने सब ठीक कर रखा था। जब वह चलने को हुआ, तब मैंने अपनी शिकायत पेश कर दी। बस, इस पर वह एकदम चिल्ला पड़ा—'इधर तो एक सरकारी मामले की जाँच शुरू होनेवाली है और तू अपनी बग़िया की शिकायत लेकर बैठा है। यहाँ तो प्रिवी कौंसिल के जज आ रहे हैं, और तूने यह गोभी का राग छेड़ दिया मुझे झिकाने के लिए!'—बस, मैं अधीर हो उठा और कुछ कह बैठा—बहुत सख़्त तो कोई बात नहीं कही थी, लेकिन वह बात उसे बुरी

लग गई और उसने मेरे मुँह पर चोट की। मैं चुप खड़ा रहा. कुछ किया नहीं, जैसे जो कुछ भी उसने किया, बिलकुल ठीक किया। वे लोग चले गये। मैं अपने होश मे आया—और मुँह धोकर इधर चला आ रहा हूँ।"

"और घर पर किसे छोड़ दिया ?"

"मेरी पत्नी है वहाँ। वही सब ठीक से देख-भाल करती रहेगी।"

वाज़ीली उठ खड़ा हुआ और सँभल गया।

"अच्छा, विदा भाई आइवानोव। मालूम नहीं बड़े दफ़्तर में मुझे अपनी पुकार सुननेवाला कोई मिलेगा भी या नहीं।"

"पर तुम पैदल तो नहीं जा रहे हो न ?"

"स्टेशन मे मैं किसी मालगाड़ी में बैठकर चला जाऊँगा और कल मास्को पहुँच जाऊँगा।"

वाज़ीली मास्को चल दिया।

कुछ दिनों तक वह नहीं लौटा। उसकी पत्नी दिन-रात उसकी जगह काम रहती थी। वह रात-रात भर जागती, पति की प्रतीक्षा में घुलती रहती। तीसरे दिन वह सरकारी कमीशन जाँच के लिए आया। एक एंजिन था, एक मालगाड़ी का डिब्बा और दो फ़र्स्ट-क्लास सैलून। लेकिन वाज़ीली अभी तक लौटकर नहीं आया। चार दिन बाद सेमीयोन उसकी पत्नी से मिला। रोते-रोते उस बेचारी की आँखें सूज गई थीं।

"क्या तुम्हारे पति लौट आये ?"—सेमीयोन ने उससे पूछा।

उत्तर में उसने केवल हाथ हिलाकर मना कर दिया और चुपचाप चली गई।

× × × ×

बचपन में ही सेमीयोन ने नरकुल की बाँसुरी बनाना सीख लिया था। नरकुल को वह खोखला कर लेता था, और फिर उसमें छेद कर लेता था। इसके बाद वह उसे इस तरह 'ट्यून' करता था कि फिर उस पर कोई भी राग बजाया जा सकता था। अपने खाली वक्त में वह ऐसी बहुत-सी बाँसुरियाँ बना लिया करता था और उन्हें शहर में बिकने के लिए भेज देता था। एक बाँसुरी के लिए उसे दो कोपेक मिल जाते थे।

सरकारी कमीशन के चले जाने के दूसरे दिन सेमीयोन जंगल में कुछ नरकुल लेने के लिए गया। घर पर वह ६ बजेवाली गाड़ी पास करने के लिए अपनी पत्नी से कह गया।

जहाँ सेमीयोन का सैक्शन समाप्त होता था, वहीं पर रेल की लाइन एकदम मुड़ जाती थी। वहाँ रेल की पटरी से उतरकर पहाड़ के नीचे जो जंगल था, वहीं सेमीयोन पहुँचा।

कोई आधा वर्स्ट अन्दर चलकर एक दलदल था, जहाँ बाँसुरी के लिए बड़े अच्छे नरकुल मिलते थे। वहीं से एक गट्ठर का गट्ठर नरकुलों का काटकर और उसे सिर पर रखकर वह घर लौट पड़ा।

सूरज डूब रहा था। जंगल के उस सुनसान में सिर्फ चिड़ियों का ही सुनाई पड़ रहा था सेमीयोन के चलने में उसके

पैरों तले की सूखी घास भी कड़कड़ा उठती था, जैसे-जैसे वह लड़ा से आगे बढ़ता चला जाता था, वैसे-वैसे ही उसे लोहे को पीटने की-सी आवाज़ साफ़ सुनाई पड़ती जाती थी। उसने सोचा कि शायद कोई लाइन में ढिबरी खोल रहा है। वह देखता रहा—एक आदमी कुदाली लिये उठकर खड़ा हुआ। उसने एक लाइन ढीली कर दी थी, जिससे कि रेल आते ही वह एक तरफ़ खिसक कर हट जाये।

सेमीयोन की आँखों के आगे धुंध छा गया। उसने चिल्लाना चाहा; पर चिल्ला नहीं सका। यह तो वाज़ीली ही था!

इधर सेमीयोन पटरी पर चढ़ रहा था और उधर वाज़ीली कुदाली और रिंच लिये पटरी पर से जल्दी-जल्दी नीचे उतर रहा था।

"वाज़ीली स्टेपानिच! मेरे अच्छे दोस्त, लौट आओ! कुदाली मुझे दो। आओ हम लोग मिलकर लाइन ठीक कर दें। किसी को भी मालूम नहीं होने दूँगा। अपनी आत्मा पर यह पाप क्यों लादते हो!"

वाज़ीली ने मुड़कर देखा तक नहीं। सीधा जंगल में घुसा चला गया।

सेमीयोन खुली हुई लाइन के पास खड़ा था। नरकुल का गट्ठर उतार कर उसने रख दिया। एक गाड़ी आनेवाली थी, माल नहीं, सवारी-गाड़ी! और सेमीयोन के पास गाड़ी रोकने के लिए कुछ भी नहीं था—लाल झंडी भी नहीं। अकेले वह इतनी

भारी लोहे की लाइन कैसे सरका कर जगह पर रख देता और खाली हाथों ढिबरियाँ कैसे कसता ? इसलिए घर दौड़कर औज़ार लाना एकदम ज़रूरी था।

"भगवान्, मेरी सहायता करो !"—सेमोर्यान ने मन ही मन प्रार्थना की।

फिर उसने अपनी झोंपड़ी की तरफ दौड़ना शुरू किया। बुरी तरह हाँफने लगा, साँस उखड़ने लगी फिर भी वह गिरता-पड़ता भागता ही चला गया। जंगल से वह बहुत दूर और अपने घर से कुछ गज़ की दूरी पर ही वह था जब कि दूर कॉटन-मिल में ६ बजे का भोंपू बजा।

बस दो ही मिनिट के भीतर ७ नं० की सवारी गाड़ी आने-वाली थी। "हे भगवान् ! निर्दोष आत्माओं पर दया कर !"—सेमोर्यान ने मन में कहा और कल्पना की कि किस तरह एंजिन के बायें पहिए खुली हुई लाइन पर पड़ते ही, कॉपिंग स्लीपरों और तख़्तों को कुचलते हुए पटरी पर से खिसकेंगे और फिर समूचा एंजिन सत्तर फ़ीट नीचे जा गिरेगा······और उसके पीछे घसिटता हुआ थर्ड क्लास······जो······ठसाठस भरा होगा और न जाने कितने बच्चे······! ····इस वक्त सब रेल में बैठे चले आ रहे होंगे—उन्हें इस ख़तरे का सपना तक नहीं आता होगा···। "हे भगवान् ! मैं क्या करूँ····नहीं, नहीं झोंपड़ी तक दौड़कर झंडी लाना असम्भव है !"

सेमोर्यान लौट पड़ा और पहले से भी तेज़ उस ओर भागने

लगा जहाँ लाइन उखाड़ी गई थी। अंधाधुंध वह भागा चला जा रहा था जैसे कोई मशीन उसे चला रही हो। वह स्वयं नहीं जानता था कि क्या होनेवाला है। उस स्थल पर वह पहुँच ही गया। वहाँ उसके नकुलों का गट्ठर पड़ा ही हुआ था। उसने झुककर फौरन ही न जाने क्यों एक नरकुल उठा लिया और आगे भाग चला। उसे लगा जैसे गाड़ी बस चली आ रही है। उसे उसकी दूर से सीटी सुनाई पड़ने लगी थी। उसने लाइन भी धीरे-धीरे हिलती देखी।

भागते-भागते उसका दम फूलने लगा। उसकी साँस उखड़ गई। और अधिक भागने की शक्ति उसमें नहीं रही। जहाँ पर लाइन हटाई गई थी, उससे दो सौ गज़ की दूरी पर वह रुक गया।

अचानक उसके मन में एक विचार उठा—जैसे वास्तव में ज्योति-किरण आकर उसका अन्तर आलोकित कर गई। उसने झट से अपना टोप उतारा और उस पर बँधी हुई कपड़े की पट्टी खोल डाली। फिर जेब से चाकू निकाला और भगवान् का नाम लेकर पालती मार कर बैठ गया। कोहनी से ऊपर अपनी बाईं भुजा में उसने चाकू घुसेड़ लिया! गरम-गरम ख़ून का फ़व्वारा छूटने लगा। उस खून में उसने कपड़े की वह टोप से उतारी हुई पट्टी रँग ली और नरकुल की डंडी के ऊपर बाँध दी—बस उसकी लाल झंडी तैयार हो गई!

वह खड़ा-खड़ा लाल झंडी दिखा रहा था। गाड़ी सामने दिखाई दे रही थी। पर अँधेरा हो आया था। ड्राइवर को इतनी

दूर से उसकी झंडी दिखाई नहीं देगी और पास आने पर तो फिर दूरी इतनी कम हो जायगी कि गाड़ी रुकते-रुकते भी रफ़्तार में दो सौ गज़ चली ही जायगी !

और उसकी भुजा से खून का फव्वारा छूट रहा था। सेमी-योन ने घाव दबाकर उसे बन्द करने की कोशिश की; लेकिन ख़ून का बहना कम नहीं हुआ। सच में उसका घाव बहुत गहरा हो गया था।

सेमीयोन का सिर घूमने लगा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसके कानों में ज़ोर की भनभनाहट हो रही थी। किंतु न तो उसे अब गाड़ी आती दिखाई दे रही थी, और न उसका शोर ही सुनाई पड़ता था। केवल एक यही विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था—"मैं खड़ा नहीं रह सकूँगा। मैं गिर पड़ूँगा और झंडी भी गिर जायगी। गाड़ी के नीचे मैं कट जाऊँगा और गाड़ी आगे चली जायगी उस जगह तक......हे भगवान् ! रक्षा करो !"

अब तो सब कुछ अँधेरा हो गया। उसका मस्तिष्क भी शून्य हो गया ! झंडी उसके हाथ से छूट पड़ी, लेकिन ज़मीन पर गिरी नहीं। अचानक किसी ने आकर उसे बीच में ही पकड़ लिया और उसे खूब ऊँची उठाकर खड़ा हो गया।

गाड़ी समीप आई। इंजीनियर ने लाल झंडी देखी। एंजिन में ब्रेक लगाया ! गाड़ी रुक गई।

मुसाफिर गाड़ी से उतर-उतर कर भीड़ लगाने लगे। उन्होंने

पटरी पर एक आदमी को ख़ून में लथपथ बेहोश पड़े देखा। एक दूसरा आदमी उसी के पास ख़ून में रँगी हुई लाल झंडी, हाथ में लिये खड़ा था।

वाज़ीली ने अपने चारों तरफ़ देखा, फिर सिर झुकाकर कहने लगा—"मुझे गिरफ़्तार कर लो। मैंने लाइन हटा दी है!"



बड़ा दिन और विवाह

डास्टोएवस्की

अभी उस दिन मैंने एक शादी देखी थी . . . . . लेकिन नहीं नहीं ! मैं एक बड़े दिन की कहानी सुनाऊँगा । शादी तो बड़ी शान की थी । मुझे भी बहुत पसन्द आई । किन्तु वह कहानी और भी अच्छी है । मालूम नहीं क्यों, शादी देखकर मुझे बड़ा दिन याद आ जाता है । बात है पाँच बरस पहले की । वर्ष का अन्तिम दिन था और दूसरे दिन से नया वर्ष शुरू होनेवाला था । उसी दिन मुझे बच्चों की एक दावत का न्योता मिला । बुलावा भेजनेवाले एक रईस व्यापारी सज्जन थे, जिनका लोगों से मेल-जोल, आना-जाना, नाता-रिश्ता बहुत बढ़ा-चढ़ा था । ऐसा मालूम होता था कि वह दावत बच्चों के माता-पिता का अन्य लोगों से आपस में मिल-जुलकर यों ही इधर-उधर की कुछ मनोरञ्जक बातें और आमोद-प्रमोद करने का एक बहाना भर थी ।

मैं भी मेहमान था और क्योंकि कोई ख़ास गप मुझे लड़ानी नहीं थी, इसलिए मैं चुपचाप अलग बैठा वक़्त काट रहा था । मेरी ही तरह एक और साहब भी वहाँ मौजूद थे जो इस घरेलू ख़ुशी के झमेले में आ फँसे थे । सबसे पहले मेरा ध्यान उन्हीं की ओर गया । देखने में वे किसी बड़े घराने के नहीं लगते थे । उस

उत्सव में उनका मन नहीं लगता मालूम होता था। रोनी-सी सूरत बनाये वे एक कोने में घुसे बैठे थे। उनकी घनी काली भौंहों में बल पड़ रहे थे। मेज़बान के अतिरिक्त वहाँ वे किसी और से परिचित नहीं थे और बैठे-बैठे उनका मन ऐसा उकता रहा था जैसे उनकी जान निकली जा रही हो, फिर भी दावत के अन्त तक वे किसी तरह जमे रहे।

बाद को मुझे मालूम हुआ कि वे ज़िला-पादरी हैं और मास्को किसी ज़रूरी काम से आये हैं, साथ में एक सिफ़ारिशी ख़त भी लेते आये थे, इसलिए हमारे मेज़बान ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय दे दिया है और कोई विशेष बात नहीं है। बच्चों की दावत में जो उन्हें शामिल कर लिया था, वह भी केवल विनम्रतावश। उनके साथ न किसी ने ताश खेले, और न किसी ने उन्हें सिगार ही पिलाये। कोई उनसे बातचीत तक नहीं कर रहा था। शायद वे लोग उड़ती हुई चिड़िया को पङ्ख देखकर ही पहिचान लेते थे। इसलिए मेरे साथी सज्जन के हाथों को करने के लिए जब कोई काम ही नहीं था, तो वे अपनी मूँछों पर ही ताव देने लगे। उनकी मूँछें सचमुच बड़ी बढ़िया थीं, किन्तु वे जिस तत्परता से उन पर ताव दे रहे थे, उससे यह शक होता था कि पहले उनकी मूँछें निकली होंगी, और बाद को केवल उन पर ताव देने के लिए ही वे स्वयं पैदा हुए होंगे!

एक अन्य मेहमान ने भी मेरा ध्यान आकर्षित किया, किन्तु वे बिलकुल भिन्न प्रकार के थे। उनका प्रखर व्यक्तित्व था। उनका

नाम जुलियन मस्ताकोविख था। व देखने से ही एक बड़े सम्मानित अतिथि मालूम होते थे, क्योंकि जितनी अधिक उपेक्षा उन मूँछों-वाले सज्जन की हो रही थी, उतना ही अधिक सत्कार इनका हो रहा था।

मेरे मेज़बान और उनकी श्रीमती जी जुलियन मस्ताकोविख से ख़ूब हँस-हँस कर बातें कर रहे थे; उनसे परिचय कराने के लिए अन्य अतिथियों को बुला-बुलाकर उनके पास लाते थे। मतलब यह कि सबसे अधिक पूछ उन्हीं की हो रही थी। मुझे याद है कि जब जुलियन मस्ताकोविख ने कहा—'आज का दिन मैं कभी न भूलूँगा, इतना सुख और आनन्द पहले मुझे कभी नहीं मिला!'—तब मेरे मेज़बान की आँखों में आँसू छलछला आये थे।

किन्तु, न जाने क्यों मुझे जुलियन मस्ताकोविख की उपस्थिति अखरने लगी। मैं उनकी ओर से ध्यान हटाकर बच्चों के साथ खेलने लगा। इन बच्चों में हमारे मेज़बान के भी पाँच स्वस्थ और सुन्दर बच्चे थे।

थोड़ी देर बाद मैं एक छोटी बैठक की तरफ़ गया, जो बिलकुल ख़ाली पड़ी थी। बैठक के अन्दर एक किनारे में कुछ गमले रखे थे, जिनमें छोटे-बड़े सभी तरह के फूलों के और वैसे पेड़ लगे थे, जो वहाँ की आधी जगह घेरे हुए थे। मैं गमलों के पास जाकर बैठ गया।

बच्चे बड़े सुंदर थे। बड़े दिन के लिए जो वृक्ष सजाया गया

था, उसकी सारी मेवा और मिठाई उन्होंने तोड़-ताड़कर खा डाली थी; जो खिलौने थे, वे भी तोड़ फोड़ डाले थे।

उन बच्चों में एक छोटा लड़का विशेष सुंदर था। उसकी आँखें काली-काली थीं और बाल घंघरवाले। अपनी लकड़ी की बन्दूक ताने वह मेरी तरफ़ ताक रहा था।

किन्तु उन सबमें मेरा सबसे अधिक ध्यान एक ग्यारह बरस की लड़की ने आकर्षित किया—वह बड़ी सुंदर और प्यारी प्यारी लगती थी। उसकी बड़ी बड़ी उभरी हुई आँखें जैसे आगत यौवन के मधुर मादक स्वप्नों से भरी हुई थीं। वह बिलकुल शांत और गम्भीर थी। कुछ बच्चों ने उसे तंग किया था, इसलिए उनका साथ छोड़कर वह उसी बैठक में चली आई, जिसमें मैं चुपचाप अकेला एक ओर बैठा हुआ था। और अपनी गुड़िया को छाती से चिपकाकर वह एक कोने में बैठ गई।

"अरे, इसका बाप तो बड़ा मालदार व्यापारी है"—कुछ मेहमानों ने आपस में आश्चर्य-सा प्रकट करते हुए कहा—"तीन लाख तो अभी से इसके केवल दहेज़ के लिए तय कर दिये हैं उसने!"

जिधर से यह सूचना मुझे सुनाई पड़ी थी, उधर की ओर मुड़कर जो मैंने देखा, तो सामने जुलियन मस्ताकोविच खड़े दिखाई दिये। अपने हाथ पीठ-पीछे किये और सिर एक ओर झुकाये वे बड़े ध्यान से कान लगाये मेहमान लोगों की उपर्युक्त बातचीत सुन रहे थे।

इधर मैं मन ही मन अपने मेज़बान की प्रशंसा कर रहा था कि कितनी चतुरता से इसने इन बच्चों में खिलौनों का हिस्सा-बाँट किया है। लाखों के दहेजवाली सुंदरी को उसने सबसे सुंदर गुड़िया दी थी। शेष बच्चों को उनके माता-पिता की हैसियत के अनुसार ही क़ीमती खिलौने दिये गये थे। इस तरह सबसे नीचे दर्जे पर जो दस बरस का दुबला-पतला लाल बालोंवाला एक छोटा-सा लड़का था, उसे एक किताब मिली, जिसमें जंगल, पहाड़, नदी, बादल, आसमान, हवा, फूलों आदि की कहानियाँ थीं, लेकिन तसवीर एक भी नहीं थी। वह आया का लड़का था। आया बिचारी ग़रीब विधवा थी। ऊँचा मटमैला और बुरा-सा कुरता पहने उसका लड़का बड़ा दबा और डरा हुआ-सा दिखाई पड़ता था।

लड़का अपनी कहानियों की किताब लेकर बाक़ी बच्चों के खिलौनों के पास मँडराने लगा। मन में लालसा, आँखों में लालच और मुँह में पानी भरकर वह खिलौनों की तरफ़ देखता था और उनसे खेलने भर के लिए वह अपनी कोई भी चीज़ दे सकता था। पर कुछ बोलने तक का साहस उसे नहीं होता था, और मन मसोस-मसोस कर वह रह जाता; जैसे वह अपनी हैसियत स्वयं समझता था!

बच्चों का अध्ययन करने का मुझे शौक़ है। एक दूसरे से अपने को बढ़-चढ़कर दिखाने के लिए वे आपस में कैसे झगड़ते हैं, यह देखने में बड़ा आनन्द आता है। मैं देख रहा था कि

उस आया के लड़के को दूसरे बच्चों की चीज़ें बहुत लुभा रही थीं; विशेष रूप से एक कठपुतली का तमाशाघर, जिससे खेलने को वह इतना ललचा रहा था कि उन बच्चों से लड़ने को भी तैयार हो जाता। हँसकर वह और बच्चों के साथ मिलकर खेलने लगा। उसे एक सेब मिला था, वह भी उसने एक दूसरे लड़के को दे दिया जिसकी जेबें पहले से ही मेवा और मिठाई से ठसाठस भरी हुई थीं। फिर वह एक और छोटे बच्चे को अपनी पीठ पर चढ़ाकर घुमा लाया—यह सब कुछ वह केवल उस कठपुतली के तमाशघर से खेलने के लिए कर रहा था।

थोड़ी देर में एक साहब आये, जो ज़रा अपने को कुछ समझते थे, और आते ही लड़के के घूंसे मारने लगे। लड़का बिचारा चिल्लाया तक नहीं। इतने में आया आगई और उसने अपने ही लड़के को झिड़क दिया—"ख़बरदार! जो तू अब इनके साथ खेला—चल भाग यहाँ से!"

लड़का भागकर मेरे कमरे में आया और उस सुन्दरी लड़की के पास बैठ गया। फिर वे दोनों मिलकर गुड़िया को कपड़े पहिनाने में व्यस्त होगये।

आधा घंटा बीता। लड़के और लड़की की बातें कुछ-कुछ मेरे कानों में पड़ रही थीं। ख़ाली बैठे-बैठे मैं ऊँघने लगा था कि एकाएक कमरे में जुलियन मस्ताकोविच ने पैर रखा।

ड्राइंगरूम में जब बच्चों के खेल का शोर बहुत बढ़ गया था, तब वे वहाँ से चुपके से खिसक आये थे। वहीं बैठे-बैठे मैंने देखा

था कि कुछ देर पहले वे लड़की के पिता से बातचीत कर रहे थे, जिनसे उनका अभी-अभी परिचय हुआ था।

थोड़ी देर तक वे कुछ सोचते हुए खड़े रहे। बीच-बीच में कुछ बड़बड़ाते भी जाते थे, जैसे उंगलियों पर कुछ गिन रहे हों :

"तीन सौ—तीन सौ—ग्यारह—बारह—तेरह—सोलह... पाँच बरस में! समझ लीजिए कि चार प्रतिशत..... बारह दूंजे—साठ; और फिर इन साठ पर......यानी पाँच बरस में लगभग—अच्छा, ठीक है—तो चार सौ हो जायेंगे......हूँ... हूँ!......पर वह बूढ़ा खर्राट चार प्रतिशत से ही कैसे मान जायगा—नहीं मानेगा......तो अगर आठ या दस प्रतिशत... तब शायद......तो फिर पांच सौ......यानी पाँच लाख तो हो ही जायेंगे, जरूर! और उसके ऊपर जो कुछ मिलेगा, सो जेब-खर्च......हूँ......ठीक......!"

यह कहकर उन्होंने अपनी नाक रगड़ी और कमरे से बाहर जानेवाले ही थे कि उनकी नज़र लड़की पर पड़ी। वे ठिठक गये। गमलों के पीछे होने के कारण से उन्हें दिखाई नहीं पड़ता था। जुलियन उत्साह के मारे कांपने लगते थे। और शायद यह उत्साह उन्हें अभी अपने पाँच लाख के हिसाब से ही मिला था।

हाथ हिला-हिलाकर वे इधर से उधर चक्कर काटने लगे। उनका जोश बढ़ता ही जा रहा था।

फिर किसी-न-किसी तरह उन्होंने अपना उत्साह शान्त किया और टहलना बन्द कर दिया। भावी दुलहन को उन्होंने बड़े

ध्यान से देखा। उनकी दृष्टि में जैसे कोई दृढ़ संकल्प भरा था। उसकी ओर बढ़े, किन्तु पहले इधर-उधर नज़र घुमाकर देख लिया कि कोई है तो नहीं।

फिर जैसे चोर की तरह क़दम उठा-उठाकर रखते हुए वे लड़की के पास पहुँचे और झुककर मुस्कराते हुए उन्होंने उसका मस्तक चूम लिया।

किन्तु उनका पहुँचना और यह सब कुछ करना इतना आकस्मिक था कि लड़की डरकर चौंक पड़ी।

फिर इधर-उधर देखकर उन्होंने लड़की के गोरे-गोरे गुलाबी गाल मसले, और धीरे से बोले—"प्यारी बच्ची, क्या कर रही है?"

"हम तो खेल रहे थे।"

"क्या, इसके साथ?" जुलियन मस्ताकोविख ने आया के लड़के की ओर कनखियों से देखते हुए लड़की से पूछा। और फिर लड़के से बोला, "जाओ—तुम ड्राइंगरूम में जाकर और बच्चों के साथ खेलो!"

लड़का चुप रहा। केवल आँखें फाड़-फाड़कर जुलियन की ओर देखता रहा।

जुलियन मस्ताकोविख ने फिर अपने चारों ओर देखा—सावधानी से, और लड़की के ऊपर झुक गया।

"मेरी रानी, तुम्हारे पास यह क्या है, गुड़िया?"

"हाँ, है तो!" लड़की ने मुँह फुलाकर कहा। उसकी भौंहों में बल पड़ गये।

"गुड़िया ? और तुम जानती हो गुड़िया कैसे बनती है ?"

"नहीं तो," धीरे से कहकर उसने अपना सिर झुका लिया।

"फटे चीथड़ों से, समझी रानी !—और तू—छोकरा अभी तक यहीं खड़ा है—भाग यहाँ से—जा चल ड्राइंगरूम में !" जुलियन मस्ताकोविख ने लड़के की तरफ़ भुन्नाते हुए कड़क कर कहा।

लड़के और लड़की दोनों की भौंहे तन गईं और गाल फूल गये। उन्होंने एक दूसरे को कसकर पकड़ लिया और बैठे रहे। अपनी आवाज़ और भी महीन से महीन करते हुए मस्ताकोविख ने फिर कहा—"और तुम्हें यह गुड़िया क्यों मिली ?—जानती हो ?"

"नहीं !"

"क्योंकि तुम बड़ी अच्छी लड़की हो—शैतानी नहीं करतीं !" इतना कहते कहते जुलियन मस्ताकोविख में एक विचित्र चञ्चलता और आतुरता-सी भर गई। उनका स्वर इतना धीमा हो गया कि सुनाई भी मुश्किल से पड़ता। फिर इधर-उधर देखा और भावावेश में अधीर होकर कहा—"तुम मुझे प्यार करोगी, मेरी रानी ?"

और यह कहकर उसे कसकर चूमना चाहा, लेकिन लड़के ने देखा कि उसके आँसू बस निकलने ही वाले हैं, और उसका हाथ पकड़ कर जैसे सहानुभूति में ज़ोर से चीख़कर रो पड़ा। इससे जुलियन मस्ताकोविख को क्रोध आ गया।

"चल ! भाग—यहाँ से—भाग ! अपने साथियों के साथ जाकर खेल—जा—जा—जा......!"

"नहीं—वह नहीं जायगा—नहीं जायगा—नहीं जायगा ! आप यहाँ से चले जाइए !" लड़की चिल्ला पड़ी, "जाइए, जाइए—एकदम चले जाइए—वह यहीं रहेगा !" और कहते कहते वह रो आई।

द्वार पर किसी के पैरों की आहट हुई। जुलियन मस्ताकोविख चौंक कर सीधे होगये।

किन्तु लड़का और भी अधिक चौंक गया था। उसने एकदम लड़की का हाथ छोड़ दिया। वह दीवार के सहारे सहारे सरकता हुआ ड्राइंगरूम में पहुँचा और फिर वहाँ से खाने के कमरे में खिसक गया।

नज़र से बचने के लिए जुलियन मस्ताकोविख भी खाने के कमरे मे चलते बने। वे अङ्गारे की तरह लाल हो रहे थे। रास्ते में एक क़द्दे-आदम आइना था, जिसमें उन्होंने अपनी सूरत देखी, तो झुँझला पड़े। फिर उन्हें अपनी व्यर्थ की अधीरता और भावनावेश पर और भी अधिक झुँझलाहट चढ़ी। अपने आदर-सम्मान का बिना कोई ख़्याल किये ही वह अपने पाँच लाख के हिसाब से उन बच्चों की तरह अधीर और लालायित हो उठे थे, जो बस केवल सीधे अपनी चीज़ की तरफ दौड़ते हैं बिना कुछ देखे-भाले, यद्यपि वह लड़की अभी उनकी पत्नी हुई नहीं थी; और यदि होती भी, तो पाँच वर्ष बाद ही।

जुलियन मस्ताकोविच के पीछे-पीछे मैं भी उठकर खाने के कमरे में पहुँचा। वहाँ मैंने एक बड़े मज़े का तमाशा देखा। आया का लड़का वहाँ पहले से ही मौजूद था। आँखें लाल-पीली करके जुलियन साहब उसे धमकाने लगे। डरता हुआ लड़का हर क़दम पर पीछे ही हटता चला गया, यहाँ तक कि वह फिर बिलकुल दीवार से जा लगा, जहाँ एक मेज़ पड़ी थी। अब उसकी समझ में नहीं आता था कि भाग कर जाये भी, तो किधर।

"निकल जा यहाँ से तू! कर क्या रहा है यहाँ? मैं कहता हूँ एकदम निकल जा यहाँ से, हरामख़ोर कहीं का! हूँ—और क्यों, फल चुरा रहा होगा? तो ठीक, फल ही चुरा रहा था! चल, कलमुँहे निकल यहाँ से—अपने साथी कमीनों में बैठ जाकर!"

जब बचने का कोई और मार्ग नहीं दिखाई दिया, तब वह बेचारा सहमा हुआ लड़का जल्दी में मेज़ के नीचे घुस गया।

जुलियन मस्ताकोविच तो अब जैसे क्रोध में बिलकुल पागल होगये थे। उन्होंने जेब से अपना रूमाल निकाला और उसे बटकर उससे लड़के को मार-मार कर बाहर निकालना चाहा।

हाँ, एक बात मुझे अवश्य बतलानी है। जुलियन मस्ताकोविच बड़े भारी-भरकम और गोल-मटोल आदमी थे। उनकी तोंद निकली हुई थी, गाल ख़ूब फूले हुए थे, और घुटने गेंद की तरह गोल-गोल थे। उन्हें पसीना आ रहा था और वे हाँफ रहे थे। उस बेचारे लड़के से उन्हें इतनी घृणा (या ईर्ष्या?) थी कि वह सचमुच पागल की तरह चीख़ने-चिल्लाने भी लगे थे।

मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा।

जुलियन मस्ताकोविख ने मुड़कर देखा। वे हक्के-बक्के-से रह गये। क्षण भर को तो वे जैसे अपना बड़प्पन भी भूल गये थे।

उसी समय हमारे मेज़बान पीछे के दरवाज़े से आ पहुँचे। लड़का मेज़ के नीचे से रेंगकर बाहर निकल आया और अपने हाथों-पैरों से धूल झाड़कर खड़ा होगया।

जुलियन मस्ताकोविख ने झपट कर अपना रूमाल उठा लिया।

मेज़बान ने हम तीनों की ओर बहुत कुछ संदेह-भरी दृष्टि से देखा। लेकिन, संसार को समझनेवाले एक बुद्धिमान् व्यक्ति की तरह, जो बात बिगड़ने नहीं देता और परिस्थिति सम्हाल लेता है, उन्होंने तुरन्त उस अवसर पर अपने सम्मानित अतिथि जुलियन मस्ताकोविख से लाभ उठाना चाहा—

"यही लड़का है जिसके बारे में मैं आपसे कह रहा था," उन्होंने आया के लड़के की ओर संकेत करके कहा, "मैं यह पहले से जानता हूँ कि आप इस पर अवश्य कृपा करेंगे!"

"ओह!" जुलियन मस्ताकोविख ने उत्तर दिया, पर अभी तक वे अपने आपे में नहीं आये थे।

"यह हमारी आया का लड़का है", मेज़बान ने विनयपूर्वक कहा, "वह बेचारी ग़रीब है—विधवा। उसका पति एक बड़ा ईमानदार अफसर था। इसी लिए तो......अगर आप कर सकें तो.....।"

"नहीं, नहीं हो सकता!" जुलियन मस्ताकोविख ने जल्दी से चिल्लाकर कहा, "फिलिप अलिक्ज़िएविच, आप मुझे माफ़

करे—मैं सचमुच कुछ नहीं कर सकता। मैंने पता लगा लिया है। एक भी जगह ख़ाली नहीं है, और अभी दस उम्मीदवार पहले के ही हैं, उनका ज़्यादा हक़ है—मैं कुछ नहीं कर सकता, मजबूर हूँ—माफ़ कीजिए।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ", फ़िलिप ने कहा, "यह बड़ा सीधा—बड़ा भला लड़का है।"

"पर मैं कहता हूँ कि यह छोकरा बड़ा शैतान है," जुलियन मस्ताकोविख ने मुँह बिगाड़ कर कहा, "जा रे छोकरे—भागता क्यों नहीं ? जा, बच्चों के साथ खेल !"

और वे अपने आपे में नहीं रह सके। मेरी ओर देखा। मैं भी अपने को न रोक सका। उनके मुँह पर ही ठहाका मार कर हँस पड़ा।

जुलियन मस्ताकोविख चिढ़ गये। मेरी तरफ़ पीठ करके फ़िलिप से बातें करने लगे। बातें मुझे साफ़ सुनाई पड़ रही थी। मेज़बान से उन्होंने पूछा कि वे साहब कौन थे जो उनके पास सिफ़ारिशी ख़त लेकर आये थे।

फ़िलिप ने धीरे से कुछ उत्तर दिया और फिर वे लोग बातें करते हुए कमरे से बाहर चले गये। उन्होंने मेरी कोई परवाह नहीं की।

मुझे बहुत हँसी आई।

फिर मैं भी ड्राइंगरूम में चला गया। वहाँ हमारे मेज़बान और उनकी श्रीमती जी के अतिरिक्त अन्य बच्चों के माता-पिता भी

थे। उन सबके बीच में हमारे जुलियन मस्ताकोविच साहब घिरे बैठे एक महिला से बातें कर रहे थे। वह महिला उस सुंदरी लड़की की माता थीं और अभी हाल ही जुलियन का उनसे परिचय हुआ था।

जुलियन मस्ताकोविच लड़की की प्रशंसा के पुल बाँधे दे रहे थे—वह कितनी सुदर है, कितनी होशियार, और तमीज़दार है—और क्यों न हो, है भी तो कुलीन घर की—भले मा-बाप की लड़की। मतलब यह कि वह सब तरह से लड़की की मा की चापलूसी और ख़ुशामद कर रहे थे। और उधर अपनी बेटी की तारीफ सुनते-सुनते मा की आँखों मे ख़ुशी के आँसू छलछला आये थे।

पिता ने अपनी पुत्री की प्रशंसा सुनकर मुस्कराकर अपने मन का सुख और सन्तोष प्रकट किया।

यह प्रसन्नता सुगन्ध की तरह फैल गई। सभी ने इसमें भाग लिया। यहाँ तक कि बच्चों ने भी शोर बन्द कर दिया, जिससे उन लोगों की बातचीत मे कोई विघ्न न पड़े।

लड़की की मा फूली नहीं समाती थी। अत्यन्त विनय, शील, विनम्रता और शिष्टता से पूर्ण स्वर में उन्होंने जुलियन मस्ताकोविच से कहा—"आप हमारे यहाँ अवश्य आये .....बड़ी कृपा होगी ......हम आपके बड़े अनुगृहीत होंगे......अपना सौभाग्य समझेंगे ......।"

ऐसा प्रतीत होता था जैसे प्रत्येक शब्द सीधा उनके हृदय से निकल कर आ रहा हो।

जुलियन मस्ताकोविच मन ही मन अति प्रसन्न हुए, पर अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए उन्होंने उत्साहपूर्वक निमन्त्रण स्वीकार किया और बोले—"देखिए मैं अवश्य ही आने का प्रयत्न करूँगा—धन्यवाद!"

फिर मेहमान लोग उठ-उठकर जाने लगे। आपस में बातचीत भी करते जाते थे। मुझे उन लोगों की बातें कुछ कुछ सुनाई पड़ी थीं। वे बड़े खुले दिल से उस धनवान् व्यापारी, उसकी पत्नी तथा पुत्री—उसी सुन्दरी लड़की—और विशेष रूप से जुलियन मस्ताकोविच की प्रशंसा कर रहे थे।

जुलियन मस्ताकोविच के समीप ही मेरे एक मित्र खड़े थे। उनसे मैंने ज़ोर से पूछा—"क्या उसकी शादी होगई?

जुलियन मस्ताकोविच ने विषभरी दृष्टि से मेरी ओर घूरा—

मेरे मित्र जुलियन मस्ताकोविच को मेरे जान-बूझ कर छेड़ने से चौंक उठे थे, उत्तर में बोले, "नहीं तो!"

× × × ×

उस दिन मैं......के गिरजाघर के पास से गुज़र रहा था। वहाँ कुछ भीड़ इकट्ठी देखकर ठिठक गया। पता लगा कि किसी की शादी हो रही है।

दिन भर बड़ी उमस रही थी। शाम होने के साथ ही बादल घिर आये थे और कुछ कुछ झला पड़ने लगा था।

भीड़ में होकर मैं अन्दर गिरजे में गया। वहाँ पहुँचकर मैंने वर देखा: सजा-सजाया, गोल-मटोल और तोंद निकली हुई। वह इधर-उधर दौड़-दौड़ कर प्रबन्ध करने में व्यस्त था।

थोड़ी देर में ही सूचना दी गई कि वधू आ रही है।

और मैंने देखी आती हुई सौंदर्य की एक साकार प्रतिमा, जिसमें यौवन की झलक अभी अच्छी तरह चमकी भी नहीं थी। उसकी सुन्दरता करुण और मुर्झाई हुई थी। कुछ खोई-खोई, भूली-भूली-सी लगती थी वह। उसकी आँखों से ऐसा लगता था जैसे वह अभी-अभी ख़ूब रोकर चुप हुई हो। किन्तु इस करुण वेदना से उसके सौंदर्य की रूप-रेखा और भी अधिक स्पष्ट होकर दीप्त हो उठी थी! उस करुण वेदना में से उसका बच्चों का-सा भोलापन अब भी जैसे टपका पड़ता था। यौवन-सुलभ गम्भीरता और स्थिरता उसमें नहीं थी। उसमें थी न जाने कैसी शैशव की-सी चंचलता और सुकुमारता जो मौन ही दया के लिए प्रार्थना-सी करती लगती थी।

लोग कह रहे थे कि वह षोडशी है!

मैंने ध्यानपूर्वक वर को देखा—अरे, यह तो जुलियन मस्ता-कोविच ही थे, जिन्हें इधर मैंने पाँच बरस से नहीं देखा था!

फिर मैंने वधू की ओर देखा—'हे भगवान्!' मैं वहाँ रुक नहीं सका। जल्दी जल्दी गिरजे से बाहर आया।

भीड़ में से निकलते-निकलते मैंने लोगों को कहते सुना था—"बहू बड़ी धनवान् है......पाँच लाख का तो दहेज़ ही है—और न जाने कितना और ऊपर से......!"

"तब तो उसने ठीक हिसाब लगाया था"—सड़क पर पैर रखते-रखते मैंने सोचा।

मृत्यु-शय्या पर शादी

तुर्गनेव

एक दिन जब मैं दूर एक गाँव से लौट रहा था, तब रास्ते में मुझे ठंड लग गई और बुखार आगया। अच्छा यह हुआ कि मुझे बुख़ार शहर की सराय में पहुँच जाने पर चढ़ा। मैंने डाक्टर को बुलाया।

आध घंटे बाद डाक्टर आया। वह दुबला-पतला और साधारण क़द का था। उसके बाल काले थे।

डाक्टर ने नुसखा लिख दिया—एक पसीना लानेवाली दवाई और अलसी की पुलटिस।

मैंने पाँच रूबल का एक नोट दिया, जिसे उसने बड़ी सफाई से अपने कोट के अन्दर के जेब में रख लिया। फिर उसे कुछ सूखी खाँसी आई और वह उठकर चलने का उपक्रम करने लगा, किन्तु बात करते करते फिर रुक गया।

बुख़ार के मारे मुझे बहुत कमज़ोरी थी और इसलिए मेरी रात बड़ी बेचैनी से कटनेवाली थी। कुछ बातचीत कर मन बहलाने लगा। हम लोगों ने चाय पी। डाक्टर खुल कर बातें कर रहा था। वह बड़ा समझदार आदमी था। उसकी हर बात में ज़ोर रहता और कुछ न कुछ चुहल भी। वैसे यह दुनिया अजीब

है। तुम किसी के साथ बरसों मित्र बन कर रहो और हो सकता है कि कभी एक दिन भी तुम उससे खुलकर अपने मन की बात न कहो, किन्तु किसी से चाहे परिचय भी अच्छी तरह न हुआ हो, फिर भी तुम उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दो—अपनी गुप्त से गुप्त बातें कह दो। कुछ ऐसी ही बात मेरे साथ हुई। न जाने कैसे डाक्टर ने मुझ पर विश्वास कर लिया और एक बड़ी विचित्र घटना सुनाई। वह यों है :—

डाक्टर ने कमज़ोर और काँपती आवाज़ में कहना शुरू किया—"तुम शायद यहाँ के जज साहब मीलोव पेविल लूकिच को नहीं जानते, क्यों ?... ...ख़ैर, कोई बात नहीं।"

फिर डाक्टर ने खाँस कर अपना गला साफ़ किया, आँखें मलीं और तब कहा—

"ईस्टर के दिनों की बात है। मैं जज साहब के यहाँ बैठा हुआ ताश खेल रहा था। जज साहब बड़े अच्छे आदमी हैं और ताश खेलने का उन्हें शौक़ है। अचानक"—डाक्टर को 'अचानक' कहने की आदत थी—"मुझे मालूम हुआ कि कोई नौकर मुझे पूछने आया है। और किसी रोगी के पास से एक चिट्ठी लाया है। मैंने उस चिट्ठी को मँगाकर पढ़ा—आप जानते हैं, रोगी ही तो हमारी रोटी-दाल हैं......हाँ, तो वह चिट्ठी एक विधवा स्त्री ने भेजी थी और लिखा था—'मेरी बेटी मर रही है......भगवान् के लिए फ़ौरन चले आओ ......मैं सवारी भेज रही हूँ'..... यह सब तो ठीक था, पर वह शहर से बीस मील दूर थी, और

उस वक्त आधी रात थी, घर से बाहर जङ्गल में इतनी रात गये जाना और उस पर सड़क की वह हालत थी कि कुछ न पूछो! और क्योंकि वह ग़रीब स्त्री थी, इसलिए उससे दो रूबल से अधिक तो क्या मिलते, और वह भी शायद ही! और कौन जाने फ़ीस में सिर्फ़ खाने को सूखी रोटी और रात बिताने के लिए टाट ही मिले। फिर भी, तुम जानते हो, कर्तव्य कर्तव्य है—हमारा एक साथी ही तो मर रहा था। जो भी हो, मैं प्रान्तीय कमीशन के सदस्य कालिओपिन को ताश देकर घर चला आया। घर आकर अपने दरवाज़े मैंने एक गाड़ी खड़ी देखी, जिसमें खूब मोटे-मोटे घोड़े, जो टाट ओढ़े थे, जुते हुए थे। कोचवान ने अभिवादन करने के लिए टोपी उतार ली थी, और वह नंगे सिर बैठा हुआ था। यह सब देखकर मैं ताड़ गया कि रोगी कोई मालदार असामी नहीं है......" यह सुनकर मुझे हँसी आगई, पर डाक्टर अपनी बात कहे चला गया—"तुम हँसते हो.... अरे..... लेकिन तुम्हें समझना चाहिए कि मुझ जैसे ग़रीब आदमी को सभी तरह की बातें सोचनी-विचारनी पड़ती हैं......अगर गाड़ी पर कोचवान अकड़ा हुआ राजा बना बैठा रहे और अपनी टोपी छूकर अभिवादन न करे,—यहाँ तक कि आपकी तरफ़ नाक-भौं भी सिकोड़े और शान से चाबुक फटकारे,—तो समझ लो कि फ़ीस में पूरे ६ रूबल मिलेंगे।......तो इस गाड़ी को देखकर मुझे दूसरी ही बात लगी, पर मैं करता क्या, कर्तव्य कर्तव्य है। मैंने जल्दी जल्दी सब ज़रूरी दवाइयाँ साथ लीं और चल दिया। क्या

तुम विश्वास करोगे ? बस मै किसी तरह चला ही गया। सड़क तो पूरी वैतरणी थी ! ऊबड़-खाबड़, पानी भरे हुए गड्ढे, कीचड़, और फिर एक पुलिया अचानक फट पड़ी थी—बस वह तो पूरी आफ़त ही थी ! जैसे-तैसे मैं पहुँच ही तो गया। एक छप्पर पड़ा झोपड़ा था। झरोखे में से धीमा-धीमा उजाला आ रहा था, जिससे मालूम होता था कि वे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे।

गाड़ी के खड़े होते ही एक भली बूढ़ी स्त्री अन्दर से निकलकर आई और करुण आतुरता से कहने लगी, "डाक्टर, उसे बचाओ... ...वह मरी जा रही है......डाक्टर—बचाओ, बचाओ !" मैंने उसे आश्वासन दिया, "घबराओ नहीं......रोगिणी है कहाँ ?"

"इधर आइए !"

"मैंने देखा ! एक छोटी-सी साफ़ कोठरी है। एक कोने में दिया जल रहा है। चारपाई पर एक बीस वर्ष की युवती बेहोश पड़ी है। बुख़ार की गरमी मे उसका बदन जल रहा था। साँस भारी-भारी चल रही थी। वहीं उसकी दो बहनें खड़ी हुई थीं—सहमी हुई। उनकी आँखों से आँसू टप-टप गिर रहे थे। वे कहने लगी—"कल तो ये बिलकुल भली-चंगी थी। खाना भी अच्छी तरह खाया था। आज सबेरे सिर में कुछ दर्द बतलाती थी, और देखिए इस वक्त यह हाल है !"

मैंने फिर कहा—"तो इसमें घबराने की कौन-सी बात है।" तुम जानते हो डाक्टर को सान्त्वना देनी चाहिए—हाँ, तो मैं उसके पास गया और जाँच की। इसके बाद नुस्ख़ा लिखकर उन

लोगों से उसके अलसी की पुलटिस लगाने को कहा। पर मैं बराबर उसकी ओर देखता रहा—मेरी नज़र उसके मुख पर से हटती ही नही थी—हे भगवान् ! मैने ऐसा सुंदर मुख पहले कभी नही देखा था—साक्षात् सौंदर्य था वह ! महानुभूति से मै सिहर उठा—उफ—इतनी सुन्दर आँखे—इतनी सुन्दरी !......पर भगवान् की दया से उसकी हालत कुछ सम्हलती दिखाई पड़ी, उसे पसीना छूटा और वह होश मे आगई। गर्दन फिराकर उसने चारों तरफ देखा और मुस्कराई......उसे होश मे आया देख वे दोनों बहने उसके ऊपर झुक गई, पूछने लगी—"कैसी तबीअत है?"

"ठीक है।" कहकर उसने करवट ले ली।

मैं उसे देखता ही रहा। वह सो गई।

तब मैंने कहा—"अब इसे आराम से अकेले सोने दो।"

दबे-दबे पाँव हम सब लोग उसकी कोठरी से बाहर निकल आये। ज़रूरत पड़ने पर काम के लिए वहाँ केवल नौकरानी रह गई।

बैठक में एक बोतल 'रम' (शराब) मेज़ पर रखी थी और चाय के लिए पानी गरम हो रहा था। तुम जानते ही हो कि हमारे इस पेशे में इन चीज़ों के बिना काम नहीं चलता।

उन लोगों ने मुझे चाय पिलाई और रात को रुक जाने के लिए कहा।

मैं राज़ी होगया, वरना उस समय रात को जाता कहाँ?

बुढ़िया रोती रही।

मैंने कहा, "रोती क्यों हो? वह मरेगी नहीं। परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं है। दो बज रहे हैं, आप जाकर आराम कीजिए।"

"लेकिन अगर कोई बात हो, तो मुझे जगा लीजिएगा?"

"हाँ, हाँ!"

बुढ़िया सोने चली गई और वे दोनों बहनें भी। मेरे लिए उन्होंने बैठक में ही बिस्तरा लगा दिया।

मैं भी सोने चला गया—पर मुझे नींद नहीं आई। मैं इतना थका हुआ था, तब भी रोगिणी मेरे ध्यान से हटती ही न थी। फिर मैंने सोचा—"जाकर उसे देख न लूँ कैसी हालत में है अब।"

उसकी कोठरी मेरी बैठक के बराबर ही तो थी। मै उठ बैठा और जाकर उसकी कोठरी के किवाड़ धीरे से खोले—मेरा दिल धक् धक् कर रहा था। मैंने अंदर झाँका—नौकरानी अपना मुँह खोले सो रही थी और कम्बख्त ज़ोर ज़ोर से खुर्राटे भर रही थी! लेकिन लड़की का मुँह मेरी ही तरफ था और उसकी बाँहें खुली हुई फैली थीं। बेचारी लड़की!......मै उसके पास पहुँचा......तभी अचानक उसने अपनी आँखें खोल दीं और मुझे देखने लगी—"कौन? कौन?"

मैं घबरा गया। फिर सम्हल कर मैंने कहा—"घबराओ नही—मैं डाक्टर हूँ, तुम्हारी इस वक्त क्या हालत है? मैं तुम्हें देखने आया हूँ।"

"आप—डाक्टर ?"

"हाँ, हाँ। तुम्हारी मा ने मुझे शहर से बुलाया है। मैंने तुम्हें दवाई दी है। अच्छा अब सो जाओ। भगवान् ने चाहा तो मैं तुम्हे दो-एक दिन म ही अच्छा कर दूँगा—तुम चलने-फिरने लगोगी।"

"हाँ, हाँ, डाक्टर मुझे बचा लो—बचा लो! मुझे मरने मत दो.....डाक्टर!"

"तुम कैसी बातें करती हो ? भगवान् सब भला करेंगे!" मैंने सोचा—'इसे फिर बुखार चढ़ आया' और उसकी नब्ज़ टटोली—हाँ, सचमुच बुखार चढ़ा था।

उसने मेरी तरफ़ देखा और मेरा हाथ पकड़ लिया, कहने लगी—"जानते हो मैं क्यों नहीं मरना चाहती—अच्छा मैं आपको बतलाऊँगी......अब हम लोग अकेले हैं.... पर देखिए, हाँ—किसी मे कहिएगा नही......किसी से भी नहीं...... सुनो....."

मैं झुक गया। उसने अपने ओठ मेरे कानो से लगा दिये। उसके बाल मेरे गालो को छूने लगे—मेरा सिर चकराने लगा—और वह फुसफुसाने लगी.....लेकिन मेरी समझ में कुछ नहीं आया .....ओह, उसे सरसाम आगया था......वह न जाने क्या क्या कहती चली गई......ऐसा लगता था जैसे वह रूसी न बोल रही हो। किसी तरह उसने अपनी बात समाप्त की और काँपता हुआ सिर तकिये पर पटक दिया, फिर उँगली दिखाकर

मुझसे कहने लगी, "डाक्टर—देखिए—याद रखिए—किसी से भी नहीं—किसी से भी !"

मैंने उसे किसी तरह शांत किया, कुछ पीने को दिया, और नौकरानी को जगाकर लौट आया ।"

इस स्थल पर आकर डाक्टर रुक गया । उसने ज़ोर से हुलास सँघी और उसका नशा पाकर कुछ क्षण तक मुँह बनाये रहा ।

उसने फिर कहना शुरू किया :—

"पर दूसरे दिन जैसा मैं सोचता था लड़की की हालत सुधरी नहीं । मैं बहुत सोच में पड़ गया और फिर अचानक ठहरने का इरादा कर लिया, यद्यपि शहर में मेरे बहुत-से रोगी इंतज़ार करते होंगे......और तुम जानते ही हो कि हम उन्हें भी भुला नहीं सकते, क्योंकि अगर हम उनकी परवाह न करें, तो फिर हमारी रोज़ी मारी जाय । लेकिन पहली बात तो यह थी कि लड़की सचमुच ख़तरे में थी, दूसरे—मैं तुमसे सच ही कह दूँ—मैं उसकी ओर आकर्षित होगया था । इसके सिवाय, मुझे वे सब लोग भी अच्छे लगते थे । यद्यपि उनकी हालत सचमुच बहुत गई-बीती थी, फिर भी वे लोग बड़े सुसंस्कृत थे......लड़कियों का पिता जो एक विद्वान् लेखक था, ग़रीबी में ही मर गया था, लेकिन मरने से पहले ही वह अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का अच्छा प्रबंध कर गया था। उसके पास अनेक किताबें थीं। इस कारण कि मैं रोगिणी की बहुत अच्छी तरह देख-भाल करता था, या किसी भी कारण से हो, सारा घर मुझे अपने सगे की तरह प्यार करने लगा था.........

"उन दिनों सड़कें बहुत ख़राब थी। क़रीब क़रीब सभी आना-जाना बंद था। यहाँ तक कि शहर से दवाई तक मुश्किल से आ पाती थी......लड़की की हालत सुधर नहीं रही थी.... दिन प्रतिदिन.....और दिन प्रतिदिन..... लेकिन.....यहाँ......" कहते-कहते डाक्टर कुछ रुक कर बोला, "......मेरी समझ में नहीं आता कि मैं आपको कैसे बतलाऊँ......" फिर डाक्टर ने ज़रा हुलास सूघी, खाँसा, और थोड़ी-सी चाय पी, तब कहा, "मैं घुमा-फिराकर कहने के बजाय तुम्हें सीधे-सीधे बतलाता हूँ ...मेरी रोगिणी......कैसे कहूँ मैं? ...तो—तो वह मुझे प्यार करने लगी थी......या......नहीं..... यह बात नहीं थी कि वह प्यार करती थी......कुछ भी हो, सच, कैसे कहा जाय?"

डाक्टर की पलके झुक गई और मुख लाल पड़ गया।

"नहीं" फिर उसने जल्दी जल्दी कहना शुरू किया "प्यार ही तो! आदमी को अपने बारे में बढ़-बढ़ कर नहीं सोचना चाहिए। वह पढ़ी-लिखी होशियार लड़की थी, और मुझे तो अपनी लैटिन तक याद नहीं है—बिलकुल भूल गया हूँ जैसे—और देखने में,"—डाक्टर ने अपने को मुस्कराते हुए देखा, "भी तो मै कोई ऐसा अच्छा नहीं हूँ कि कुछ समझा जाय—लेकिन भगवान् ने मुझे बेवकूफ नहीं बनाया। मै दिन को रात नहीं कहूँगा। मैं दो-एक बाते ज़रूर जानता हूँ, जैसे एक यही कि अलेक्जेंड्रा ऐंड्रेयेवना—यही उसका नाम था—के हृदय में मेरे लिए प्रेम नहीं था, लेकिन

कहना चाहिए कि मुझसे मित्रता करने की उसकी कुछ तबीअत थी,—कुछ श्रद्धा-सी, या कुछ कहो, मेरे लिए थी। वैसे वह स्वयं भी अपनी भावना को ठीक ठीक समझ नहीं पाई थी। तुम चाहो सो समझ लो। लेकिन" डाक्टर ने साँस ली। इतना सब कुछ वह एक ही साँस में जल्दी-जल्दी टूटे-टूटे और घबराये-से स्वर में कह गया था। इसलिए कुछ रुक कर फिर कहा, "मैं शायद बात ठीक ठीक नहीं कह पा रहा—तुम्हारी समझ में ऐसी कोई बात नही आ सकती......पर अब मै सब बात सिलसिलेवार सुनाऊँगा !"

पूरा एक प्याला चाय पीने के बाद डाक्टर ने शात स्वर मे फिर अपनी कहानी शुरू की :—

"अच्छा, तो फिर मेरी रोगिणी की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही चली गई। तुम डाक्टर नही हो। जब बीमारी डाक्टर के हाथ से निकलती मालूम होती है, जब उसका इलाज उसकी शक्ति से बाहर होने लगता है, तब डाक्टर के दिल की क्या हालत होती है, तुम नही समझ सकते। उसका आत्मविश्वास न जाने कहाँ खो जाता है! डाक्टर को जाने कैसा बुरा बुरा-सा लगने लगता है। उसे लगता है जैसे मै पढ़ा-लिखा सब भूल गया हूँ; कुछ जानता ही नही, और रोगी मुझमे विश्वास नही करता, आस्था नही रखता। लोग समझते है कि डाक्टर मन लगाकर काम नही करता और फिर उसे रोगी का हाल भी ढंग से नही बताते। उसे संदेहभरी दृष्टि से देखने लगते हैं, आपस में काना-

फ़ुसी करते हैं......उफ़ ! यह सब असह्य हो उठता है ! डाक्टर सोचता है इस रोग की कोई न कोई दवाई होनी ही चाहिए—अगर मालूम हो सके तो कितना अच्छा हो ! वह एक दवाई देता है, फिर दूसरी,—वह भी नहीं, तो फिर तीसरी !......एक दवाई भी अपना पूरा असर दिखाने के लिए समय नही पाती कि डाक्टर दूसरी दे देता है। घबराहट मे वह कभी इसका सहारा लेता है, कभी उसका। कभी अपनी किताबों में टटोलता है और सोचता है कि बस यही दवाई ठीक रहेगी !......फिर वह सोचने लगता है कोई भी दे दो, जो भगवान् करेगा, सो होगा.. ...पर नहीं......एक आदमी की जान जोखिम में है, हो सकता है कोई दूसरा डाक्टर ही इसे ठीक कर दे। वह सोचता है, क्यों न किसी दूसरे डाक्टर की सलाह ले ली जाय ? मैं ही क्यों अपने ऊपर हत्या लूँ—और तब ऐसी परिस्थिति में डाक्टर कैसा मूर्ख-सा लगता है। पर होते होते यह सब सहने की आदत पड़ जाती है। किसी रोगी की जान चली जाय, तो डाक्टर का इसमें क्या दोष ? डाक्टर के लिए जैसे वह कुछ नहीं के बराबर है। वह जानता है कि उसने नियमानुसार इलाज किया। फिर भी डाक्टर को यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि रोगी और उसका सारा घर मुझमें ही आँख मीच कर विश्वास करता है, मेरी योग्यता में आस्था रखता है, मेरी ओर आशाभरी दृष्टि से देखता है, पर मैं किसी काम नहीं आ सकता, कोई भलाई नहीं कर सकता ! कुछ ऐसा ही अंध-विश्वास अलेक्ज़ेड्रा और उसके सब घरवालों का मुझमें

था। वे यह बिलकुल भूल गये थे कि हमारी लड़की का बचना मुश्किल है। मै भी अपनी तरफ़ से उन्हें ढाढ़स बँधाता रहता था कि घबराने की कोई बात नहीं है। सब ठीक है। पर भीतर ही भीतर मेरा दिल बैठा जा रहा था और ऊपर से मुसीबत यह थी कि कोचवान कई दिन से शहर दवाई लेने गया था, पर अभी तक लौटा नहीं था; सड़के जो बहुत ख़राब थीं। मै कभी लड़की के पास से हटता नहीं था, हर वक्त उसी की कोठरी में बैठा-बैठा उसे मज़ेदार कहानियाँ सुनाया करता था और उसके साथ ताश खेला करता था। रात को भी मैं उसके सिरहाने बैठा उसे देखता रहता था। और यह सब देखकर बुढ़िया मा की आँखो मे कृतज्ञता के आँसू भर आते थे। रुँधे हुए गले से वह कहती—"डाक्टर! मै तुम्हारा उपकार कभी नही भूलूँगी!" पर मैं मन में कहता—'उपकार मैंने कुछ नहीं किया है। यह तो मेरा अपना ही काम है।'—अब मै तुमसे क्या छिपाऊँ—छिपाने से कोई फायदा नही—मै लड़की को प्यार करने लगा था और वह भी मुझे बहुत चाहने लगी थी; यहाँ तक कि मेरे सिवाय अपनी कोठरी में किसी को भी नहीं बैठने देती। वह मुझसे घंटों बात-चीत करती रहती, तरह-तरह के सवाल पूछती—"तुम्हारा घर कहाँ है? .....तुम्हारे घर मे कौन-कौन है?... ..क्या-क्या और कहाँ-कहाँ पढ़ा है?......" और भी न जाने क्या-क्या! वह सवालों की झड़ी लगा देती थी और मैं सोचता था कि इसका बहुत बात करना ठीक नहीं; और इसी लिए

मना करना चाहता था—पर—पर तुम जानते हो—मैं कैसे मना कर देता—मै मना नहीं कर सकता था—नहीं कर पाता था! कभी-कभी मैं अपना सिर थामकर अपने मन से पूछता—"तू यह सब क्या बदमाशी कर रहा है? यह क्या उचित है?"...... पर वह मेरा हाथ पकड़ लेती, टकटकी लगाकर मुझे देखती—मेरी आँखो में अपनी आँखें डाल देती—फिर आह भरकर पलकें झुका लेती, कहती—'तुम कितने अच्छे हो......!'

"बुखार में उसके हाथ तपते होते—उसकी उन बड़ी-बड़ी आँखों मे आलस्य भरा होता, थकी-सी और निर्जीव-सी होतीं वे......'हाँ' वह कहती, 'तुम बड़े अच्छे आदमी हो—तुममें कितनी सहानुभूति है......तुम हमारे पड़ोसियो की तरह नहीं हो......तुम उन लोगों की तरह नहीं हो......तुम मुझे पहले हो क्यो नही मिल गये!'

मैं समझाता—"अलेक्जेंड्रा, मन शान्त करो अपना..... मैं भी तो......विश्वास करो मेरे ऊपर..... मुझे जाने कैसे तुम्हारा प्यार......लेकिन—घबराने की क्या बात है......सब ठीक हो जायगा......तुम बिलकुल अच्छी हो जाओगी......—हाँ, और यहाँ पर एक बात मै तुम्हे और बतला दूँ"—डाक्टर ने आगे झुककर और अपनी भौहें चढ़ाकर कहा—"वे लोग अपने पास-पड़ोसियो से बहुत कम आना-जाना और चाल-चलन रखते थे। बात यह थी कि छोटे लोग उनकी बराबरी के नहीं थे, और बड़े मालदार लोगो से मिलने के लिए उनका स्वाभिमान रोकता था।

मै तुमसे कहता तो हूँ कि ऐसे अच्छे लोग तुम्हे दुनिया मे कम मिलेगे। तो फिर तुम समझ ही सकते हो कि मुझे वहाँ कैसा अच्छा लगता था। वह अगर दवाई पीती, तो मेरे ही हाथो से... वह मेरे ही सहारा लगाने पर उठकर बैठती.... .और फिर मेरी तरफ देखती ही रह जाती..... उस वक्त मेरा दिल जैसे फटने लगता था!

"पर दिन प्रतिदिन उसकी हालत ख़राब ही होती चली जा रही थी। मुझे लगने लगा कि अब यह बचेगी नहीं—किसी तरह नहीं बच सकती! और सच मानो कि मैं उससे पहले ही मर जाने की बात सोचने लगा।

"इधर उसकी मा और बहने मेरा मुँह देखती......मेरी आँखों में अपनी नज़रें गड़ा देती..... उनका विश्वास मुझ पर से उठ रहा था.... .वे पूछतीं—'क्या हाल है अब?' मैं कहता—'सब ठीक है, सब ठीक है!'—

"सब ठीक ही तो था!

"मैं हतबुद्धि हो रहा था—पागल हुआ जा रहा था।

"एक दिन रात को मै उसके पास अकेला बैठा हुआ था। नौकरानी भी वही दीवार से लगी बैठी थी, लेकिन भराभर नीद मे ख़ुर्राटे भर रही थी। पर उस बेचारी का क्या क़सूर—वह करती भी क्या, काम करते-करते बहुत थक जो गई थी।

"शाम से अलेक्ज़ेड्रा बहुत बेचैन थी। बुख़ार चढ़ रहा था। आधी रात तक वह बिस्तर पर करवटे बदलती, पैर पटकती

और तड़पती रही। फिर कुछ सोती-सी मालूम हुई। वह निश्चल मौन लेटी थी। ईसा की पवित्र मूर्ति के सामने वहीं एक तरफ़ कोने में दिया जल रहा था। पास ही सिर झुकाये मैं बैठा ऊँघ रहा था।......अचानक मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने मुझे झकझोर दिया। मैंने आँखें खोलकर देखा......हे भगवान्! अलेक्ज़ेंड्रा मुझे ध्यानपूर्वक टकटकी लगाये देख रही थी......उसके ओंठ खुले हुए थे—गाल जलते मालूम देते थे......

'क्या है, क्यो ?' मैंने पूछा।

'डाक्टर, क्या मैं मर जाऊँगी ?'

'भगवान् न करे !'

'नहीं-नहीं, डाक्टर......मैं ज़िन्दा रहूँगी—डाक्टर मुझसे ऐसा न कहो.....अगर जानते हो, तो बतला दो......देखो ! भगवान् के लिए झूट न बोलो, मुझे सच-सच बतलाओ अब मेरा हाल क्या है.......डाक्टर-डाक्टर......?' कहते-कहते उसकी साँस फूलने लगी।—'अगर मुझे सचमुच मालूम हो जाय कि मैं बचूगी नहीं, तो मैं तुम्हें सब कुछ ठीक-ठीक बतला दूगी डाक्टर—तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगी......'

'अलेक्ज़ेंड्रा, देखो मेरी बात मानो......' मैंने कहा।

'सुनो, मैं सोई नहीं—यो ही आँखे बन्द किये लेटी थी—मैं तुम्हे कब से देख रही हूँ.....भगवान्! मैं तुम पर विश्वास करती हूँ—तुम बड़े अच्छे हो, बड़े भले हो—मुझे सच-सच

बतलाओ......मेरा बड़ा उपकार करोगे डाक्टर.....भगवान् के लिए बतला दो न !......क्या मै नहीं बचूँगी ?'

'बताओ न, मै तुम्हें क्या बतला दूँ अलेक्जेंड्रा ?'

'भगवान् के लिए......मै तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ......!'

'मै तुमसे कैसे छिपाऊँ—छिपा ही नही सकता...... अलेक्जेंड्रा तुम्हारी हालत सचमुच नाज़ुक है—लेकिन भगवान् सब भला करेगा !'

'तो मैं मर जाऊँगी ! मर जाऊँगी !' वह एकदम जैसे ख़ुश होकर चीख़ पड़ी। उसका मुख चमकने लगा। मैं शंकित हो गया।

'घबराते क्यों हो ?—मुझे तो मौत से डर नही लगता—मै तो मरने से नही डरती !' कहकर वह अचानक उठ बैठी और अपनी कोहनी पर मुँह रखकर कहने लगी—'अच्छा तो अब तुम्हें बतलाती हूँ.....मै हृदय से तुम्हारा उपकार मानती हूँ... मैं तुम्हारी बड़ी कृतज्ञ हूँ—डाक्टर तुम कितने अच्छे हो !—मै तुम्हें प्यार करती हूँ !' मै चौंक पड़ा। उसकी तरफ ध्यान से देखा। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं कुछ पा गया। पर, तुम समझ सकते हो—यह सब बड़ा अजीब था।

'सुनते हो—मै तुम्हें प्यार करती हूँ !'

'अलेक्जेंड्रा क्या मैं..... मैं..... इस योग्य......!'

'नहीं, नहीं......उफ़—तुम समझते नही—तुम कुछ नहीं जानते......!'

"और यह कहते-कहते उसने अचानक अपनी बाहें फैलाकर मेरा मस्तक अपने आलिंगन में भरकर चूम लिया!.... सच मानो......मेरी चीख-सी निकल पड़ी......घुटने टेककर मैं बैठ गया और अपना मुँह उसके तकिये में छिपा लिया।

"वह बोली नहीं। उसकी उँगलियाँ मेरे बालों में काँपती चल रही थीं। मुझे लगा वह रो रही है।

"मैं उसे चुपाने लगा—धीरज बँधाने लगा......मुझे ठीक ठीक तो याद नहीं कि मैंने उससे क्या कहा, शायद यह, 'तुम इस नौकरानी को जगा दोगी ....अलेक्ज़ेड्रा......मैं तुम्हारी इस भलाई का आभारी हूँ—मुझ पर विश्वास करो......पर घबराती क्यों हो.... शान्त हो जाओ!'

'बस, बस! अब और नहीं......मैं किसी की परवाह नहीं करती अब......सबको जग जाने दो .....सबको यहाँ अन्दर आ जाने दो—होता क्या है......मैं तो अब मर ही रही हूँ. ... और तुम क्यों डरते हो?.. ...क्यों डर है तुम्हें?.... इधर मेरी तरफ देखो......नहीं देखते, नहीं देखते......तब शायद तुम मुझे प्यार नहीं करते .....तो मैं भूल रही थी......अच्छा, मुझे माफ कर दो।'

"मैं चुप रहा। उसने फिर अपनी आँखें मेरी आँखों में डाल दीं और बाहें फैला दीं। और आतुर होकर कहने लगी—'तो फिर मुझे अपने दिल से लगा लो......अपने आलिंगन में भर लो न......!'

"मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मैं नहीं जानता कि मैं उस दिन पागल क्यों नहीं हो गया ! मैं जानता था कि लड़की अपने को मारे डाल रही है, वह आपे में नहीं है। और मैं यह भी समझ रहा था कि अगर वह अपने को मौत के घाट पर न समझती होती, तो मेरा ध्यान भी न होता उसे, मुझे कभी न अपनाती ! पर एक बात है। तुम चाहे जो भी कहो। अपनी भरी जवानी में बिना प्यार किये और प्यार पाये ही मरने में जाने कितनी व्यथा होती होगी ! यही व्यथा तो उसे भी खाये जा रही थी। इसी दुख में घुल-घुल कर तो वह मरी जा रही थी। इसी निराश और असहाय अवस्था में तो उसने आशातुर होकर मेरा सहारा पकड़ा था—अब तो तुम समझ गये न ?

"वह मुझे अपने आलिंगन में कसे ही रही; किसी तरह छोड़ती नहीं थी।

'ज़रा अपनी हालत तो देखो—तुम्हारी तबीअत ठीक नहीं है, मुझे छोड़ो न......!'

'क्यों ? क्यों छोड़ूँ ? अब मैं किस की शर्म करूँ ? मैं मर तो जाऊँगी ही......अगर मैं बच जाऊँ—अच्छी हो जाऊँ...... बिलकुल पहले जैसी हो जाऊँ, तब तो मैं शर्माऊँ भी......ज़रूर शर्माऊँ......पर अब क्यों, किसके लिए शर्म करूँ ?—मैं मरूँगी तो हूँ ही !'

'लेकिन कौन कहता है कि तुम मरोगी ?'

'जाने भी दो अब—तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते डाक्टर—

डाक्टर तुम झूठ बोलना नहीं जानते—ज़रा अपनी सूरत तो देखो—तुम कभी झूठ नहीं बोल सकते......तुम बहुत अच्छे हो—तुम मेरे हो—मैं तुम्हे प्यार करती हूँ !'

'अलेक्ज़ेंड्रा, तुम मरोगी नहीं। मैं तुम्हें अच्छा कर दूंगा... फिर हम लोग मा के आशीर्वाद लेंगे—और मिलकर एक हो जायँगे......सुख से रहेंगे।'

'नहीं, नहीं—तुम अभी कह चुके हो मै मर जाऊँगी—मैं ज़रूर मर जाऊँगी। मैं तुम्हारी बात मे विश्वास करती हूँ......!'

"और देखो छोटी-छोटी बातें नहीं मालूम पड़ती, लेकिन कभी कभी उनसे कैसा अनर्थ हो जाता है और फिर कितना बुरा लगता है! उसे न जाने क्या सूझी कि मेरा नाम पूछ बैठी। और दुर्भाग्यवश मेरा नाम है ट्राइफन आइवानिख। वैसे वहाँ घर में सब लोग मुझे 'डाक्टर' ही कहते थे। हाँ, तो मैंने उससे कहा—'मुझे ट्राइफ़न' कहते हैं।

"यह सुनते ही उसके माथे में बल पड़ गये और फ्रैंच में कुछ बड़बड़ाई—हाँ, उसने कोई बुरी बात कही!—और फिर बुरी तरह से वह हँस पड़ी।

"ख़ैर, उसके साथ इसी तरह मैंने सारी रात बिताई। मुझे लगा कि मैं पागल हो गया हूँ। सबेरा होने से पहले ही मैं उसकी कोठरी से चला आया था।

"सबेरा हुआ। चाय पीने के बाद मैंने जाकर उसे देखा, तो पहचान भी न सका! मरने के बाद भी लोगों की सूरत इतनी

विकृत नहीं होती जितनी कि अलेक्ज़ेंड्रा की हो गई थी ! मैं तुमसे अपनी इज़्ज़त की क़सम खाकर कहता हूँ कि यह सब कुछ अनुभव करके भी न जाने कैसे मैं ज़िंदा रहा !

"तीन दिन और तीन रात तक अलेक्ज़ेंड्रा की जान खिंचती रही। उफ वे रातें कितनी भयानक थीं ! उसने क्या क्या नहीं कहा मुझसे ! और अंतिम रात—उफ ज़रा सोचो तो सही !—मैं उसके पास बैठा था और भगवान् से केवल यही प्रार्थना कर रहा था—'हे भगवान् ! इसे जल्दी से जल्दी उठा ले ! और मुझे भी इसके साथ ही उठा ले !'

"अचानक बुढ़िया मा कोठरी मे आ गई। शाम को ही मैं उनसे कह चुका था कि अलेक्ज़ेंड्रा के बचने की अब कोई आशा नहीं है। वह कुछ ही देर की मेहमान है, इसलिए पादरी को बुला लीजिए।

"मा को देखते ही अलेक्ज़ेंड्रा कहने लगी—'चलो, अच्छा हुआ, तुम आ गई। देखो हम दोनो एक दूसरे को प्यार करते हैं—हमने आपस में निश्चय कर लिया है—वचन दे चुके हैं......!'

'डाक्टर यह कह क्या रही है ?' मा ने पूछा।

"मै सफेद पड़ गया। सम्हल कर कहा—'बुख़ार मे बड़बड़ा रही है। सरसाम आ गया है......!'

"किंतु अलेक्ज़ेंड्रा बीच में ही बोल पड़ी—'चुप-चुप ! तुम अभी तो मुझसे कुछ और कह रहे थे। तुमने मेरी अँगूठी ले ली

है। अब चुप क्यों रहे हो? मेरी मा बड़ी अच्छी हैं—तुम्हें माफ़ कर देंगी—वे सब समझती हैं—और मैं तो मर ही रही हूँ...... मैं झूठ नहीं बोलना चाहती......लो मेरा हाथ......!'

"मैं एकदम उठ खड़ा हुआ और कोठरी से बाहर चला आया। बुढ़िया मा सब कुछ ताड़ गई।

"पर अब मैं तुम्हें आगे सुनाकर थकाऊँगा नहीं, और मुझे भी यह सब कुछ याद करके दुःख होता है।......दूसरे दिन अलेक्जेंड्रा चल बसी!......भगवान् उसकी आत्मा को शांति दे!" डाक्टर जल्दी से कह गया फिर एक आह भरी, "मरने से ठीक पहले उसने अपने सब घरवालों को कमरे से हट जाने को कहा था और केवल मुझी को अपने पास अकेले रहने दिया था!......उसने मुझसे कहा था—'मुझे माफ़ करो......शायद सारा दोष मेरा ही है......मेरी बीमारी......पर सच जानो, मैंने तुमसे ज्यादा किसी और को कभी प्यार नहीं किया......तुम्हीं मेरे प्यारे हो......मुझे भूलना नहीं......मेरी अँगूठी अपने ही पास रखना हमेशा......!'"

इतना कहकर डाक्टर ने मुँह फेर लिया। मैंने उनका हाथ थाम लिया।

"ऊँह" कुछ ठहरकर डाक्टर ने कहा—"और कुछ बात करो अब। कुछ बाज़ी लगाकर ताश खेलोगे? मुझ जैसे लोगों को भावुक नहीं होना चाहिए। मेरे लिए तो बस यही काम रह गया है कि बच्चों का रोना-धोना बन्द करता रहूँ और पत्नी को

नाराज़ न होने दूँ ।......और उसके बाद तो फिर, तुम जानते ही हो, मैंने, जैसे कि लोग कहते हैं, ढङ्ग से शादी की......ओह... एक सौदागर की लड़की से शादी की—सात हज़ार दहेज़ में मिला। उसका नाम आकुलिना है, और ट्राइफ़न उसके साथ अच्छी तरह निभा रहा है। मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि उसका मिज़ाज बड़ा ख़राब है—लेकिन अच्छा है कि वह दिन-रात बस सोया ही करती है... अच्छा, तो फिर फ़्लास खेली जाय ?"

हम लोग फ़्लास खेलने लगे। हवेनी* की बोट रखी गई। ट्राइफ़न आइवानिख ने मुझसे ढाई रूबल जीत लिये और फिर अपनी जीत से ख़ुश होकर काफी रात गये घर लौट गया।

* (Half penny) लगभग दो पैसे के बराबर एक सिक्का।

नौकर

सेमियोनोव

बड़े दिन से पहले मास्को में काम मिलना बहुत मुश्किल होता है, क्योंकि उन दिनों आदमी बड़े दिन का कुछ न कुछ बड़ा इनाम पाने की आशा में छोटा काम भी कर लेता है। इन्हीं दिनों जरासिम अपने गाँव से मास्को लौटकर आया। किंतु बीस-इक्कीस दिन तक गली-गली छान डालने पर भी उसे कोई नौकरी नहीं मिली। बेचारे किसान-लड़के की मेहनत अकारथ हो गई।

उसके गाँव के कई रिश्तेदार और दोस्त भी मास्को में नौकरी करते थे। उन्हीं के पास जरासिम ठहरा हुआ था, और यद्यपि वह भूखों नहीं मर रहा था, फिर भी हताश हुआ जाता था कि मुझ जैसे हट्टे-कट्टे युवक को भी काम नहीं मिलता।

मास्को में जरासिम बचपन से रहा था। जब वह बिलकुल बच्चा ही था, तब आबकारी में शराब की बोतलें धोने का काम करता था और उसके कुछ समय बाद एक गृहस्थ के घर नौकर हो गया था। पिछले दो बरस से वह एक दुकान पर नौकर था, और अब भी उसी स्थान पर होता; पर गाँव में फ़ौजी काम के लिए बुला लिया गया था; लेकिन न जाने क्यों वह फौज में भर्ती

नहीं किया गया। गाँव के जीवन का अभ्यस्त तो वह था नहीं, इसलिए शीघ्र ही वहाँ उसका जी ऊबने लगा और उसने इरादा किया कि मैं मास्को जाऊँगा ज़रूर, चाहे वहाँ रहकर मुझे पत्थर ही तोड़ने पड़ें।

सो वह मास्को आगया था।

तो अब सड़कों पर बेकार घूमते-घूमते वह तंग आगया। किसी भी तरह का काम पाने के लिए उसने अपने प्रयत्नों में कोई कसर उठा कर रक्खी नहीं थी— अपने जितने भी परिचित थे, उन सबके पास हो आया था—यहाँ तक कि राह चलते लोगों को रोककर भी उनसे पूछा था कि आपको किसी काम के लिए क्या किसी नौकर की ज़रूरत है?—पर सब व्यर्थ! सब ओर से निराशा ही मिली उसे।

फिर अपने नातेदारों के ऊपर बोझ बनकर रहना उसे खलने लगा। कुछ नातेदारों को तो उसका अपने पास आना-जाना भी बुरा लगता था; और कुछ को अपने मालिक लोगों से उसके पीछे झिड़की खानी पड़ी थी। जरासिम की समझ में कुछ नहीं आता था कि आख़िर वह करे भी तो क्या!

और फिर तो उसे सारा का सारा दिन भूखे ही बिताना पड़ता था।

(२)

सोकोल्निक मास्को के एक छोर पर एक मुहल्ला है। वहाँ जरासिम का अपना एक गाँव का मित्र रहता था। उसका मित्र

शारोव नामक एक सौदागर के पास कई बरस से कोचवान था। वह अपने मालिक के बहुत मुँह लगा हुआ था। मालिक उस पर पूरा-पूरा विश्वास करता था और बड़ा मेहरबान भी था। कोचवान बातें बनाने में बहुत चतुर था, इसी से वह अपने मालिक का विश्वासपात्र बन सका था। वह सब नौकरों पर हुकूमत करता था, जो शारोव की दृष्टि मे उसका बहुत बड़ा गुण था।

एक दिन जरासिम इसी कोचवान के पास आया और अभिवादन करके बैठ गया।

कोचवान ने अपने मेहमान की खूब खातिर की; चाय पिलाई और मिठाई खिलाई। फिर पूछा—"कहो क्या हाल-चाल है? क्या कर रहे हो आजकल?"

"बड़ा बुरा हाल है, येगोर दानीलिक", जरासिम ने उत्तर दिया, "कई सप्ताह से मैं बिलकुल बेकार हूँ।"

"क्यो, क्या अपने पुराने मालिक के पास नहीं गये?"

"गया तो था।"

"तो क्या फिर वह रखता नहीं तुम्हें?"

"मेरी वह जगह पहले ही से भर चुकी है।"

"यह बात है। और यह ढग है तुम नये छोकरों के काम करने का। जब तक नौकरी करते हो, तब तक जैसे बेगार टालते हो। तभी तो एक बार नौकरी छोड़ने पर तुम लोग अपने आप ही जैसे लौट कर आने का रास्ता बन्द कर जाते हो। तुम्हे

अपने मालिक की नौकरी इतनी अच्छी तरह करनी चाहिए कि तुम्हारे चले जाने पर वे तुम्हारी याद करते रहें, और जब तुम वापस आओ, तब तुम्हे रखने के लिए मजबूर हो जायें—तुम्हारे लिए चाहे उन्हे दूसरा नौकर निकालना ही क्यों न पड़े !"

"सो कोई आदमी कैसे कर सकता है ? आजकल इस ज़माने में ऐसे मालिक नही हैं, और न हमी लोग वैसे देवता हैं।"

"बेकार बक-बक क्यों करते हो ? मेरी अपनी ही बात सुनो। अगर कभी मुझे यहाँ से नौकरी छोड़कर गाँव जाना पड़े, तो वहाँ से लौटकर आने पर शारोव साहब मुझे न केवल बिना मेरे कहे फिर रख लेंगे, बल्कि ख़ुश भी होंगे।"

जरासिम उदास मन बैठा था। वह देख रहा था कि मेरा मित्र बढ़-बढ़ कर शान बघार रहा है। इसलिए उसने सोचा कि मैं क्यो न इसकी प्रशंसा कर इसे प्रसन्न करूँ—

"सो तो मैं जानता हूं," वह बोला, "लेकिन तुम्हारे जैसे कितने अच्छे आदमी हैं, येगोर ? दुनिया मे कोई दस-बीस येगोर दानीलिक थोड़े ही हैं। अगर तुम अच्छा काम न करते होते, तो मालिक तुम्हें बारह बरस कैसे रखते ?"

येगोर मुस्करा दिया। अपनी प्रशसा उसे अच्छी लगी।

"तो अब तुम समझे," येगोर ने फूलकर कहा, "अगर तुम मेरी तरह रहकर काम करो, तो कभी एक दिन भी बेकार न रहो।"

जरासिम चुप रहा।

तब तक येगोर को मालिक ने बुलाया।

"ज़रा ठहरो। मैं अभी आया।"—कहकर येगोर चला गया।

जरासिम बैठा रहा।

(३)

येगोर लौट आया और जरासिम से बोला—"अभी आध घटे में गाड़ी तैयार करके मालिक को शहर ले जाना है।"

फिर उसने अपना चुरट जलाया और कमरे में घूम-घूम कर उसे पीने लगा।

जरासिम के पास ठहर कर बोला—"अच्छा, सुनो। अगर तुम चाहो तो मैं मालिक से तुम्हें नौकर रखने के लिए कहूँ।"

"क्या उन्हें नौकर चाहिए?"

"नहीं, एक है तो; पर वह बहुत अच्छा नहीं है। वह बूढ़ा हो रहा है और उससे काम अब होता नहीं। वह तो यों कहो कि यहाँ पड़ोस अच्छा है। चुपचाप रहता है। कोई बहुत चहल-पहल नहीं होती, इसी से पुलिस कुछ कहती नहीं—चाहे साफ़ रहो या गंदे। नहीं तो उस बूढे के बस का यह रोग नहीं है कि वह ठीक सफ़ाई रख सके।"

"अगर मेरे लिए कह सको, तो ज़रूर कहो येगोर। मैं जीवन भर तुम्हारे गुन गाऊँगा। मुझसे अब बेकार नहीं रहा जाता।"

"अच्छा ठीक है। तो मैं कह दूंगा। कल सबेरे आना,

और तब तक के लिए लो, यह दस 'कोपेक' लेते जाओ। काम चला लो।"

"अनेक धन्यवाद, येगोर दानीलिक ! तो फिर तुम मेरे लिए ज़रूर कोशिश करो, यह काम तो तुम्हीं को करना होगा।"

"अच्छा-अच्छा, मैं कोशिश तो करूँगा ही।"

जरासिम चला गया।

येगोर ने घोड़ों पर काठी कसी और वर्दी पहनकर घर के फाटक पर पहुँच गया।

मिस्टर शारोव घर से निकल कर गाड़ी में बैठ गये। घोड़े उड़ चले।

शहर में अपना काम समाप्त करके जब शारोव साहब घर लौट रहे थे, तब येगोर ने ताड़ लिया कि वे इस समय प्रसन्न-चित्त हैं।

"येगोर फियोडोरिक, मेरे ऊपर कुछ कृपा कीजिएगा ?"

"क्या है ?"

"मेरे गाँव का एक लड़का यहाँ आया हुआ है—बड़ा भला है वह; पर बेचारा बेकार है।"

"तो ?"

"आप उसे नौकर रख लीजिए !"

"मै उसका क्या करूँगा ?"

"घर का सारा ऊपरी काम करने के लिए रख लीजिए !"

"और पोलीकारपिक क्या करेगा ?"

"वह किस काम का है ? अब तक तो आपको उसे निकाल देना चाहिए था।"

"यह तो ठीक नहीं है। वह मेरे पास कितने बरसों से है। बिना वजह मै उसे अभी कैसे अलग कर दूँ ?"

"माना कि वह आपके पास बरसों से नौकरी कर रहा है, तो इससे क्या हुआ ? उसने मुफ़्त तो काम किया नहीं है। काम के लिए उसे पैसा मिला है। और फिर बुढ़ापे के लिए तो उसने अब तक कुछ न कुछ बचाकर रख ही लिया होगा।"

"बचा लिया होगा ! कैसे बचा सकता था ? कहाँ से ? वह अकेला तो है नहीं। उसके पत्नी है, जिसे खिलाना-पिलाना पड़ता है उसे।"

"वह भी तो कमाती है कोयला ढोकर।"

"तो उसने बहुत बचा लिया होगा न, क्यों ?—जो बुढ़ापे के लिए काफी हो !"

"आप पोलीकारपिक और उसकी औरत की फ़िक्र क्यों करते हैं ? मै आपको सच बताऊँ, वह बड़ा ख़राब काम करता है ? आप उस पर अपना पैसा क्यो बर्बाद करते हैं ? कभी ठीक वक़्त पर वह बर्फ नहीं बुहारता, न और कोई काम ढंग से करता है। जिस दिन रात को पहरा देने की उसकी बारी आती है, वह रात भर में कम से कम दस बार घर जाकर सोता है। पर वह क्या करे ? ठंढ उससे सही नहीं जाती। और आप देखिएगा कि उसके पीछे किसी दिन आपका पुलिस से झगड़ा होगा। तीन महीने

बाद जब सफाई का दरोग़ा मुआयना करने आयगा, तब आपको पोली-कार्पिक के ख़राब काम के लिए हर्जाना देना अच्छा नहीं लगेगा।"

"तब भी तो यह बुरी बात है। मेरे पास वह पन्द्रह साल से काम कर रहा है। और अब बुढ़ापे मे उसके साथ ऐसा बर्ताव करना पाप होगा।"

"पाप! आप क्या उसका कुछ बिगाड़ रहे हैं, या छीने ले रहे हैं? वह भूखा तो मरेगा नहीं। दान-गृह में चला जायगा और मज़े से पड़ा-पड़ा रोटी खायेगा। और अब इस बुढ़ापे में उसे कुछ आराम भी तो चाहिए।"

शारोव ने येगोर की बात पर विचार किया।

"अच्छा तो ठीक है," उन्होंने निश्चय करके कहा, "तो कल अपने दोस्त को यहाँ मेरे पास ले आना। मैं उसके लिए कुछ न कुछ करूँगा।"

"साहब, उसे ज़रूर नौकरी दीजिए। मुझे उस पर बड़ा तरस आता है। बड़ा भला लड़का है और बेचारा इतने दिनों से बेकार है। वह आपका काम बहुत मेहनत और सचाई से करेगा। उसे फ़ौज के लिए सरकार ने बुला लिया था, इसलिए अपनी नौकरी उसे छोड़नी पड़ी थी। अगर वह वहाँ न जाता, तो उसका मालिक उसे अपने यहाँ से कभी न निकालता।"

(४)

दूसरे दिन शाम को जरासिम येगोर के पास आया और पूछा—"कहो, कुछ किया?"

"हाँ, कुछ ज़रूर किया। आओ पहले चाय पी लें, फिर मालिक के पास चलेंगे।"

परन्तु जरासिम के लिए चाय में कोई आकर्षण नहीं था। वह नौकरी के विषय में कुछ निश्चित रूप से जान लेने को उत्सुक था। किन्तु शिष्टाचार के विनम्रतावश वह चुप रहा। जल्दी-जल्दी दो प्याले चाय के पी डाले। फिर दोनों शारोव के पास चले।

शारोव ने जरासिम से पूछा, "तुम पहले किसके यहाँ काम करते थे और अब क्या काम करोगे?" जरासिम के उत्तर दे देने पर उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें ऊपर के काम के लिए नौकर रख सकता हूँ। कल सुबह से तुम अपने काम पर तैयार होकर आ जाओ!"

जरासिम की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था। उसने समझा कि अब मेरे भाग्य खुल गये। ख़ुशी के मारे उसके पैर नहीं उठते थे। जैसे-तैसे वह कोन्चवान के कमरे तक पहुँचा।

येगोर ने कहा—"अच्छा, तो अब अपना काम बहुत ध्यान से और अच्छी तरह करना, नहीं तो फिर मुझे शर्मिन्दा होना पड़ेगा! तुम जानते ही हो कि मालिक लोग कैसे होते हैं। अगर तुम एक बार ग़लती करोगे, तो फिर मालिक तुम्हारे हर काम में ग़लती निकाला करेगा और तुम्हे चैन नहीं लेने देगा।"

"येगोर दानीलिक, तुम इसके बारे में निश्चिन्त रहो।"

"अच्छा-अच्छा!"

जरासिम चल दिया। कोठी के फाटक तक जाने के लिए बाहर का आँगन पार करना पड़ता था। उसी आँगन में होकर जरासिम जा रहा था। रात हो चुकी थी। आँगन मे एक कोठरी थी। कोठरी की खिड़की से उजाला आ रहा था। जरासिम का घर कल से इसी कोठरी मे होगा। वह उसकी एक झलक देखने को उत्सुक हो गया, किन्तु खिड़की बंद थी। उसकी किवाड़ों पर बर्फ छा रहा था, इसलिए अंदर झाँक कर भी नहीं देखा जा सकता था। फिर भी वह कोठरी के समीप गया, खिड़की से सट-कर खड़ा हो गया। उसे सुनाई पड़ा—अंदर कोई बातें कर रहा था :—

"तो अब हम क्या करेंगे ?"—एक स्त्री का-सा स्वर था।

"मैं क्या बताऊँ...क्या बताऊँ !"—स्वर पुरुष का था। अवश्य ही यह पोलीकारपिक बोल रहा था—"भीख माँगनी पड़ेगी... और क्या !"

"और हम कर ही क्या सकते हैं ! और कुछ नहीं रहा।"—स्त्री बोली,—"हाय, हम ग़रीबों की ज़िन्दगी कितनी दुखी है। हम सबेरे से लेकर आधी रात तक काम मे जुटे रहते हैं और ऐसे ही काम करते-करते बूढ़े हो जाते हैं, और तब सुनते हैं—'निकल जाओ यहाँ से'।"

"क्या करे फिर ? मालिक कोई हमारा नातेदार तो है नहीं। उसके सामने रोना-धोना बेकार होगा। वह तो अपना ही फायदा देखेगा।"

"सभी मालिक लोग ऐसे ही नीच होते हैं। वे अपने सिवाय और किसी की परवाह नहीं करते। उन्हें यह ख़्याल नहीं होता कि हम बरसों तक ईमानदारी और सचाई से उनका काम करते हैं, उनकी सेवा में अपनी सारी जान लगा देते हैं। अब मालिक में एक साल तक और रखने को तैयार नहीं है, हालाँकि हम अब भी उसी तरह काम करते हैं। जब हममें काम करने का बूता नहीं रहेगा, तब अपने आप चले जायँगे।"

"इसमें मालिक का इतना दोष नहीं है जितना कि उस कोचवान का। येगोर दानीलिक अपने किसी यार को नौकरी दिलाना चाहता है!"

"हाँ, वही मरा तो विष की गाँठ है। चापलूसी करना और बातें बनाना उसे ख़ूब आता है। अच्छा, ठहर कलमुँहे! मैं तेरी सब चालाकी निकाल दूँगी। मैं मालिक से जाकर कहूँगी कि यह घास और दाना चुरा-चुरा कर बेचता है। मैं मालिक को लिखा दिखा दूँगी, तब देखूँ वह कैसे झूठ बोलता है!"

"अरे नहीं, जाने भी दो! क्यों बुढ़ापे में पाप मोल लेती हो?"

"पाप कैसा? क्या जो कुछ मैं कह रही हूँ, सच नहीं है? मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह सब रत्ती-रत्ती भर सच है, और मैं यही जाकर मालिक से भी ज़रूर कहूँगी। वह स्वयं अपनी आँखों से देख ले। क्यों न कहूँ मैं? और हम कर ही क्या सकते हैं? हम कहाँ जायँ? कमबख़्त कोचवान ने हमारा सत्यानाश कर डाला...।"

चीखते-चीखते बुढ़िया सुबक-सुबककर रोने लगी।

जरासिम ने यह सब सुना। उसके कलेजे में जैसे किसी ने छुरी भोंक दी। उसके इस नौकरी पाने पर इन बूढ़े लोगों की कैसी दुर्दशा होगी, यह जरासिम ने समझ लिया। इससे उसे बड़ा दुःख हुआ। वेदना से व्यथित होकर कुछ देर तक वह भूला-सा खड़ा रहा। फिर लौट पड़ा और कोचवान के कमरे में गया।

"अरे! क्या कुछ भूल गये?"—येगोर ने चकित होकर पूछा।

"नहीं तो, येगोर दानीलिक!"—जरासिम ने हिचकिचाते हुए कहा—"मैं इसलिए लौटा······कि······वह···सुनो······मैं तुम्हें बहुत बहुत धन्यवाद देता हूँ······तुमने मेरी बड़ी खातिर की—नौकरी दिलाई······पर···यह नौकरी मैं नहीं कर सकता···!"

"क्या! इसका मतलब?"

"कुछ नहीं। मुझे यह नौकरी नहीं चाहिए। मैं अपने लिए खुद ही कोई दूसरा काम ढूढ़ लूँगा।"

येगोर बिगड़ उठा।

"क्या तू मुझे मूर्ख बनाने आया था! क्यों बे बदमाश? सो तो यहाँ ऐसा भोला बनकर आया था—'मुझे नौकरी दिला दो—मेरे लिए यह करो—मेरे लिए वह कर दो'—और अब जब नौकरी दिला दी, तो जी चुराता है। गुण्डा कहीं का! मेरी इज़्ज़त धूल में मिला दी!"

जरासिम कोई उत्तर न दे सका। उसका चेहरा लाल पड़ गया, पलकें नीची हो गईं।

येगोर ने उसकी तरफ़ पीठ फेर ली और फिर कुछ नहीं बोला। तब जरासिम चुपके से अपनी टोपी उठाकर चल दिया। जल्दी-जल्दी आँगन पार करके वह फाटक पर पहुँचा और फिर वहाँ से बाहर सड़क पर चला गया।

आज जरासिम का मन हलका और प्रसन्न था।

ईश्वर का न्याय

टॉल्स्टाय

एक सौदागर आइवान दमीत्रिख़ अक्सियोनोव नामक व्लाडीमीर में रहता था। उसके पास अपनी ही दो दुकानें थीं और एक मकान।

अक्सियोनोव एक सुंदर व्यक्ति था। उसके बड़े बड़े घुंघराले बाल थे और वह बड़ा हँसमुख था। उसे गाने का भी बहुत शौक़ था। जवानी में पैर रखते ही उसने शराब पीनी शुरू कर दी थी। शराब पीकर वह उन दिनों गुल-गपाड़ा भी ख़ूब मचाया करता था। लेकिन शादी करने के बाद उसने नियमित रूप से शराब पीनी छोड़ दी; यों ही कभी तीज-त्योहार पर पी लिया करता था।

गर्मी के दिन थे। निज़्नी का मेला लगनेवाला था। अक्सियोनोव ने मेले जाने की तैयारी कर ली। जब मेले जाने का दिन आया, तब उसकी पत्नी बोली, "आज न जाओ। मैंने रात तुम्हारे बारे में एक बहुत बुरा सपना देखा है!

अक्सियोनोव हँस दिया, कहने लगा—"तुम्हें यह डर है शायद कि मैं मेले में पहुँचकर कहीं ख़ूब नशा न करूँ?"

पत्नी ने उत्तर दिया—"सो तो मैं नहीं जानती। मुझे तो

बुरा सपना ही दिखाई दिया है। मैंने देखा कि तुम मेले से लौट आये हो और टोपी उतार रहे हो, पर तुम्हारे सिर के सारे बाल एकदम सफ़ेद हो गये हैं!"

अक्ज़ियोनोव फिर हँस दिया।

"यह तो बड़ा अच्छा शकुन है। देखना मैं अपना सब माल वेचकर लौटूँगा, और फिर तुम्हारे लिए मेले से बहुत-सी चीज़ें ख़रीद कर लाऊँगा।"

इस प्रकार बिदा लेकर वह मेले को चल दिया।

आधी दूर पहुँचने पर उसे रास्ते में अपनी जान-पहचान का एक सौदागर मिला। रात को वे दोनों साथ-साथ एक सराय में ठहर गये। साथ ही साथ उन्होंने चाय भी पी; पर सोने के लिए वे अलग-अलग अपने-अपने कमरों में चले गये। दोनों कमरे पास-पास एक दूसरे से चिपटे हुए थे।

अक्ज़ियोनोव की आदत देर तक सोने को नहीं थी, और दूसरे सबेरे ही सबेरे रास्ता तय कर लेने के विचार से वह जल्दी-ही सोकर उठ बैठा। साईस को जगाया और उससे घोड़े तैयार करने को कहा। स्वयं वह सराय के मालिक के पास गया, जो पिछवाड़े रहता था। उसे किराया दिया और बाहर आया। फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ा।

कोई पच्चीस मील चल लेने के बाद वह घोड़ों को दाना खिलाने के लिए एक सराय में रुका। थोड़ी देर तक तो वह बाहर दालान में बैठा-बैठा सुस्ताता रहा, फिर अंदर द्वारी में

पहुँचकर उसने चाय के लिए पानी गरम करने को नौकर से कहा, और अपना बाजा निकाल वहीं बैठकर बजाने लगा।

एकाएक घंटियाँ टुनटुनाती हुई एक बहली आ खड़ी हुई। उसमें से दो सैनिकों के साथ एक अफ़सर उतरा। वह अक्ज़ियोनोव के पास तक बढ़ा चला आया और उससे पूछने लगा—"तुम कौन हो और कहाँ से आये हो?"

दोनों प्रश्नों का उत्तर दे देने के बाद अक्ज़ियोनोव ने अफ़सर से कहा—"आइए! एक प्याला चाय पी लीजिए!"

किंतु इस निमंत्रण का कोई भी उत्तर न देकर अफ़सर उससे बराबर प्रश्न पर प्रश्न करता चला गया—"तुमने रात कहाँ बिताई? तुम अकेले थे या तुम्हारे साथ कोई और भी सौदागर था? क्या उस दूसरे सौदागर को तुमने सुबह देखा? तुम सबेरा होने से पहले ही क्यों सराय से चले आये?"

अक्ज़ियोनोव को आश्चर्य हो रहा था कि इतने प्रश्न उससे क्यों पूछे जा रहे हैं; किंतु उसने सब प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दे दिया और फिर कहा—"आप मुझसे जिरह क्यों करते हैं? मै कोई चोर हूँ या डाकू? मैं अपने काम से जा रहा हूँ और आपको मुझसे कोई भी सवाल पूछने की ज़रूरत नहीं है।"

तब अफसर ने सैनिकों को बुलाते हुए, उससे कहा—"मैं इस ज़िले की पुलिस का दारोग़ा हूँ, और यह सब प्रश्न मैंने तुमसे इसलिए किये हैं कि वह सौदागर जिसके साथ रात तुम सराय मे ठहरे थे, आज सुबह मरा हुआ पाया गया।

उसका गला कटा हुआ था। मैं तुम्हारी तलाशी लूँगा।"

यह कहकर अफ़सर और सैनिकों ने मिलकर अक्सियेनोव का सारा सामान खोल डाला और उसे खखोड़ने लगे।

एकाएक अफसर ने एक थैले में से एक छुरा निकाला और चिल्लाया—"किसका छुरा है यह ?"

अक्सियेनोव ने देखा और देखकर डर गया! छुरे पर तो खून के दाग़ थे!

"बतलाओ इस पर ख़ून के यह दाग़ कहाँ से आये ?"—अफ़सर ने कड़ककर पूछा।

अक्सियेनोव ने उत्तर देने की चेष्टा की; किन्तु वह एक शब्द भी स्पष्ट न बोल सका; केवल हिचकिचाया—"मैं··मैं···मेरा··नहीं·····मुझे······नहीं मालूम······!"

अफ़सर फिर बोला—"आज सुबह सौदागर अपने बिस्तर पर मरा हुआ पाया गया। उसका गला कटा हुआ था। सिर्फ़ तुम्हीं ने यह काम किया है। दरवाज़ा अन्दर से बन्द था और वहाँ तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा आदमी नहीं था। और यहाँ तुम्हारे थैले में यह ख़ून में रँगा हुआ छुरा मौजूद है, तुम्हारा मुँह फक़ है! अब मुझे सब बातें ठीक-ठीक बताओ! तुमने से कैसे मारा और कितना माल चुराया ?"

अक्सियेनोव ने शपथ खाकर कहा—"यह हत्या मैंने नहीं की है, और न मैं उससे रात चाय पीने के बाद फिर मिला ही हूँ।

मेरे पास केवल अपने ही आठ हज़ार रूबल* हैं। छुरा भी मेरा नही है।" किन्तु उसका स्वर टूटा-टूटा था, मुख पीला पड़ गया था, और वह भय से ऐसे काँप रहा था जैसे वह वास्तव मे अपराधी हो।

पुलिस दारोग़ा ने सैनिकों को आज्ञा दी कि अक्ज़ियोनोव को बाँधकर गाड़ी में डाल दो।

सैनिकों ने अक्ज़ियोनोव के हाथ-पैर बाँधकर उसे गाड़ी में बन्द कर दिया। वह रोने लगा। उसका सारा धन और सामान छीन लिया गया। वह पास के एक शहर में भेज दिया गया और वहाँ जेल मे बन्द कर दिया गया। व्लाडीमीर मे उसके चरित्र के बारे मे जाँच-पड़ताल हुई। वहाँ के सौदागरो तथा अन्य कई लोगों ने पुलिस को बतलाया कि बहुत दिन पहले तो अक्ज़ियोनोव शराब ज़रूर पीता था और अवारागर्दी करता था; लेकिन अब तो वह बड़ा भला और अच्छा आदमी बन गया है।

फिर एक दिन अक्ज़ियोनोव की अदालत में पेशी हुई। रयाज़न के एक सौदागर की हत्या करने और उसके बीस हज़ार रूबल लूटने का अभियोग उस पर लगाया गया।

अक्ज़ियोनोव की पत्नी बेचारी हताश थी, और हतबुद्धि भी। उसकी समझ में नही आता था कि वह अपने पति के हत्यारे होने मे विश्वास करे या न करे? उसके बच्चे अभी छोटे ही छोटे तो

---

* रुपये की तरह रूसी सिक्का।

थे। एक तो अभी बिलकुल दूध-पीता ही था। उन सबको लेकर वह उस नगर में पहुँची, जहाँ उसका पति जेल में था। पहले तो उसे पति से मिलने की आज्ञा नहीं मिली; लेकिन फिर अत्यन्त अनुनय-विनय करने के बाद उसे आज्ञा मिली और सैनिक उसे अक्ज़ियोनोव के पास ले गये।

पति को हथकड़ी-बेड़ी और जेल के कपड़े पहने और चोर और हत्यारों के साथ बन्द देखकर वह एकदम मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बड़ी देर बाद होश आने पर उसने बच्चों को पास बिठालकर पति से बातें करनी प्रारम्भ कीं। पहले उसने अक्ज़ियोनोव को घर के सब हाल-चाल बताये, फिर उससे पूछा कि यह सब हुआ कैसे।

अक्ज़ियोनोव ने सारी घटना कह सुनाई। तब वह बोली—"तो अब हम क्या करें?"

"हमें ज़ार* से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह एक निर्दोष मनुष्य के प्राण न ले।"

पर, पत्नी ने उसे बताया कि वह एक ऐसी प्रार्थना पहले ही ज़ार से कर चुकी है; किन्तु वह स्वीकृत नहीं हुई।

अक्ज़ियोनोव चुप रहा; किन्तु एकदम उदास हो गया। तब उसकी पत्नी कहने लगी—"मैंने तुमसे तभी चलते समय कहा था

---

* रूस का सम्राट्—लाल क्रान्ति से पहले। अब तो वहाँ डिक्टेटरशिप है।

कि मैंने बुरा सपना देखा है—तुम्हारे बाल सफेद हो गये हैं। याद है तुम्हें? उस दिन नहीं चलना चाहिए था!" और फिर उसके बालों को अपनी उँगलियों से सहलाते हुए उसने पूछा—"प्यारे वान्या! अपनी पत्नी से सच बोलो, क्या तुमने हत्या नहीं की थी?"

"तो तुम भी मुझ पर सन्देह करती हो!"—अक्जियोनोव क्षोभ और आश्चर्य से बोला और फिर हाथों से मुँह ढँककर रोने लगा।

इतने में एक सैनिक आया और उसने अक्जियोनोव की पत्नी और उसके बच्चो को चले जाने की आज्ञा दी।

अक्जियोनोव ने अपनी प्रिय पत्नी और प्यारे बच्चों से अंतिम विदा ली।

उन सबके चले जाने के पश्चात् उसने सोचा—"मेरी पत्नी तक मुझ पर सन्देह करती है। उसे मेरे ऊपर विश्वास नहीं। तब संसार में ईश्वर को छोड़कर और कौन सत्य जान सकता है—केवल एक ईश्वर ही सब देखता है, उसी से मुझे प्रार्थना करनी चाहिए। वही मेरे ऊपर दया करेगा—न्याय करेगा!"

अक्जियोनोव ने कोई भी प्रार्थना-पत्र सम्राट् के पास नहीं भेजा। आशा छोड़कर उसने केवल ईश्वर से ही प्रार्थना करनी प्रारम्भ की।

अक्जियोनोव के अपराध का दंड-निर्णय हुआ—कोड़े और साइबेरिया-निर्वासन।

उसके कोड़े लगाये गये और उसका सारा शरीर घायल हो

गया। घाव जब अच्छे हो गये, तब वह अन्य बंदियों के साथ साइबेरिया भेज दिया गया।

छब्बीस वर्ष तक अक्सियोनोव साइबेरिया में क़ैद रहा। उसके सिर के सारे बाल बर्फ़-से सफेद हो गये। गाल पिचक गये। दाढ़ी बढ़कर सफ़ेद हो गई। कमर झुक गई। वह धीरे-धीरे चलता था। बहुत कम बोलता था; पर प्रायः ईश्वर की प्रार्थना करता रहता था। हँसी फिर उसके होंठों पर कभी नहीं आई। उसका समस्त जीवन जैसे मर चुका था।

जेल में ही अक्सियोनोव ने जूते बनाना सीख लिया था। जूते बनाने से उसे जो थोड़ी-सी आमदनी हुई; उससे उसने 'संतों की जीवनी' नामक एक पुस्तक ख़रीद ली। कोठरी में काफ़ी उजेला होने पर वह उस पुस्तक को पढ़ता। रविवार को वह जेल के गिरजे में बाइबिल का पाठ करता और कोरस में गाता भी; क्योंकि उसका स्वर अभी तक अच्छा था।

जेल का शासक-वर्ग अक्सियोनोव को उसकी विनम्रता के कारण चाहता था और साथी बंदी उसका आदर करते थे; वे उसे "दादा" और "संत" कहकर पुकारते थे। जब उन्हें जेल के अधिकारियों से कोई प्रार्थना करनी होती, तो वे अक्सियोनोव को ही अपना अगुवा बनाते थे; जब आपस में कोई झगड़ा होता, तब उसे ही न्याय करने के लिए भी बुलाते थे।

इन छब्बीस वर्षों में अक्सियोनोव को अपनी पत्नी और बच्चों

का कोई भी समाचार नहीं मिला। उसे यह भी नहीं मालूम कि वे जीवित हैं, या मर गये।

एक दिन नये बंदियों का एक दल जेल में आया। शाम को पुराने बंदी आगन्तुकों से मिले और उनमे से प्रत्येक से उसका हाल-चाल पूछा और साइबेरिया भेजे जाने का अपराध भी। उन लोगों ने अपनी-अपनी कहानी सुनाई। अक्शियोनोव विशेष ध्यान से उनकी बातों को सुनता रहा। उसका मन उदास था।

नवागन्तुको मे एक साठ वर्ष का बलिष्ठ व्यक्ति भी था। उसका क़द लम्बा था और सफ़ेद दाढ़ी महीन-महीन छटी हुई थी। उसने भी अपनी कहानी शुरू की :—

"मित्रो, मैंने कोई अपराध नहीं किया। एक खूँटे से एक घोड़ा बँधा हुआ था, मैंने उसे खोल लिया। बस मैं गिरफ़्तार कर लिया गया और मुझ पर चोरी का अभियोग लगाया गया। मैंने उन लोगो से बहुतेरा कहा कि मुझे घर जाने की जल्दी थी, इसी लिए मै इसे खोलकर इस पर चढकर जाना चाहता था और घर पहुँचकर इसे फिर लौटा देता। दूसरे साईस मेरा अपना मित्र था। सो मैंने कहा—"इसमें क्या हर्ज हो गया ?" उन्होंने कहा—"नहीं। तुम इसे चुरा रहे थे।" लेकिन मैने कब और कहाँ उसे चुराया, यह वे नही बतला सके। एक बार मैंने अवश्य ही अपराध किया था और उसके लिए मुझे यहाँ बरसो पहले आ जाना चाहिए था, किन्तु तब वे मुझे पकड़ नही सके थे। और इस बार तो मै बिलकुल निरपराध ही यहाँ भेजा गया हूँ·····आह! पर

यह सब झूठ ही कहा मैंने। एक बार पहले मैं यहाँ भेजा जा चुका हूँ; लेकिन तब मैं भाग निकला था !"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"—किसी ने पूछा।

"वाल्डीमीर। मेरा कुटुम्ब भी वहीं है। मेरा नाम मकर है और लोग वैसे सेमियोनिख भी कहते हैं मुझे।"

अक्ज़ियोनोव ने सिर ऊँचा किया और कहा—"अच्छा, तो सेमियोनिख क्या तुम वाल्डीमीर के सौदागर अक्ज़ियोनोव को जानते हो ? क्या उसका कुटुम्ब अब भी जीवित है ?"

"जानता हूँ ? क्यों नहीं, अवश्य जानता हूँ। अक्ज़ियोनोव के पुत्र धनवान् हैं, वह स्वयं तो साइबेरिया में कहीं है, हमीं लोगों की तरह बंदी, पापी ! और—दादा तुम यहाँ कैसे आये ?"

अक्ज़ियोनोव अपना दुखड़ा रोना नहीं चाहता था। उसने केवल आह भरी और बोला—"अपने पापों का ही फल मैं यहाँ छब्बीस वर्ष से भुगत रहा हूँ।"

"पाप कैसा ?"—मकर सेमियोनिख ने पूछा। किन्तु अक्ज़ियोनोव ने केवल यही कहा,—"होगा कोई, तभी तो यहाँ भेजा गया हूँ।"

उसने आगे कुछ और नहीं कहा; लेकिन उसके साथियों ने नवागन्तुक को उसके साइबेरिया आने की सारी कथा सुना दी—कैसे किसी ने उसके साथी सौदागर का गला काटकर छुरा उसके थैले में रख दिया और वह पकड़ा गया और अन्यायपूर्वक अपराधी ठहराया गया।

यह सुनकर मकर ने अक्सियोनोव की ओर देखा, और अपने घुटने पर ताल देकर बोला—"अच्छा, यह बात ! बड़ा आश्चर्य ! वास्तव में विचित्र बात है। पर दादा ! तुम कितने बूढ़े लगते हो अभी से !"

अक्सियोनोव के साथियों ने मकर से पूछा—"तुम्हें इतना आश्चर्य क्यों हुआ ? क्या तुमने पहले कहीं इन्हें देखा है ?"

परन्तु मकर ने कोई उत्तर ठीक से नहीं दिया; केवल यही कहा—"यही क्या कम आश्चर्य है कि हम लोग यहाँ मिल गये !"

इन शब्दो से अक्सियोनोव को आश्चर्य हुआ—"क्या यह आदमी उस सौदागर के हत्यारे को जानता है ?"—फिर वह बोला—"सेमियोनिख, तुमने शायद उस मामले के बारे में कुछ सुना होगा, या हो सकता है कि पहले कहीं तुमने मुझे देखा हो ?"

"तो क्या मैं कान बन्द कर लेता ? दुनिया मे रोज़ ही न जाने कितनी अफ़वाहें उड़ती हैं। लेकिन एक ज़माना हो गया इस बात को, इसलिए मैं भूल-सा गया हूँ।"

"शायद तुमने यह तो सुना ही होगा कि उस सौदागर को किसने मारा ?"

मकर ने हँसकर उत्तर दिया, "वही हत्यारा होगा जिसके थैले में से छुरा निकला था ! अगर किसी ने उस थैले में छुरा रख भी दिया, तो जब तक वह पकड़ा न जाय, तब तक क्या ? कहावत भी है—'जब तक चोर पकड़ा न जाय, वह साहूकार ही है।'

और फिर जब थैला तुम्हारे सिर के नीचे ही रखा था, तो उसमें कोई छुरा कैसे रख देता ? और अगर रखता, तो तुम जग नहीं पड़ते ?"

यह सुनकर तो अक्सियोनोव को पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि हो न हो यही वह हत्यारा है ! फिर वह वहाँ बैठा न रह सका, उठकर चल दिया।

अक्सियोनोव को रात भर नींद नहीं आई, पड़ा-पड़ा जगता रहा। उसका मन बहुत दुःखी था और उसमें तरह-तरह के विचार आ रहे थे। उसे अपनी पत्नी का ध्यान आया—विदा समय उसकी मूर्ति सन्मुख आ खड़ी हुई। उसे लगा जैसे वह वास्तव में उसके पास बैठी हो, जैसे देख रही हो, सुन रही हो, बोल रही हो। फिर सन्मुख उसके बच्चे आ खड़े हुए, जो उस समय बहुत छोटे-छोटे थे; एक अपना छोटा-सा लबादा पहने, दूसरा मा का दूध चूसता हुआ। फिर उसे ध्यान आया कि मैं स्वयं भी तो कैसा स्वस्थ और हँसमुख था ! कैसा मस्त बैठा बाजा बजा रहा था सराय में उस समय जब दारोग़ा ने आकर मुझे गिरफ़्तार किया था। आगे अपने शरीर पर कोड़े पड़ने का दृश्य उसे दिखाई दिया ! जल्लाद खड़ा था, लोगों की भीड़ इकट्ठी थी, और वह नृशंस कोड़ा लिये खड़ा था, और फिर······चीत्कार······भयंकर वेदना······नारकीय यातना······ख़ून ही ख़ून !······और फिर मरहम-पट्टी······हथकड़ी-बेड़ी······साइबेरिया······और यह छब्बीस वर्ष······असमय बुढ़ापा !"

इन सब दुःखद स्मृतियों से अक्सियोनोव का मन इतना भारी हो गया'' ''इतना विषाद उसमें भर गया कि वह आत्म-हत्या करने को तैयार हो गया।

"और यह सब उस बदमाश सेमियोनिच की करतूत है!" अक्सियोनोव ने सोचा और मकर के प्रति उसका क्रोध इतना बढ़ा कि वह बदला लेने के लिए तड़पने लगा, चाहे अपनी जान ही क्यों न चली जाय। रात भर वह ईश्वर से प्रार्थना करता रहा, पर उसे शान्ति नहीं मिली। दूसरे दिन वह मकर से मिला नहीं, उसकी ओर उसने देखा तक नहीं।

इसी तरह पन्द्रह दिन बीत गये। रात-रात भर अक्सियोनोव को नींद न आती थी। क्या करे, समझ में नहीं आता था। एक रात को जेल मे टहलते हुए उसने देखा कि क़ैदियों के सोने की अल्मारियों में एक के नीचे से कुछ मिट्टी खिसक रही थी। एका-एक उस अल्मारी के नीचे से मकर निकलता हुआ दिखाई पड़ा। अक्सियोनोव को देखकर वह डर गया। अक्सियोनोव आगे बढ़ा चला गया जैसे उसने मकर को देखा ही नहीं; परन्तु मकर ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"मैंने दीवार के नीचे एक सुरङ्ग खोद ली है। मिट्टी जो निकली, उसे अपने जूतों में भर-भर कर उस समय बाहर सड़क पर फेंक देता हूँ, जब सब लोग काम पर चले जाते हैं।''''''और बुड्ढे! अगर तू कुछ भी बोला, तो तेरा गला घोंट दूँगा! मै पकड़ा गया, तो कोड़े मारते-मारते मेरी जान ले ली जायगी—चुपचाप रह—तुझे भी भगा ले चलूँगा!"

अपने शत्रु को देखकर अक्सियोनोव क्रोध से काँपने लगा। झटककर उसने अपना हाथ छुड़ाया—"मैं भागना नहीं चाहता—और तू मेरा गला क्या घोटेगा—तू तो मुझे वास्तव में बरसों पहले ही जान से मार चुका है! और रही तुझे पकड़वाने की बात, सो जैसी ईश्वर की आज्ञा होगी, वैसा ही करूँगा।"

दूसरे दिन जब क़ैदी लोग काम पर चलने लगे, तो साथ जानेवाले सैनिकों ने देखा कि कोई क़ैदी अपने जूतों में से मिट्टी निकाल-निकाल कर फेंक रहा है।

सारी जेल की देखा-भाली हुई। सुरङ्ग पकड़ी गई। जेलर आया और पूछ-ताछ हुई; परन्तु सभी ने कह दिया कि हमें कुछ नहीं मालूम। जिन्हें मालूम भी था, उन्होंने मकर के साथ विश्वासघात करना उचित नहीं समझा, क्योंकि वे जानते थे कि कोड़ों की मार से ही उसे मार डाला जायगा।

जेलर अक्सियोनोव को ही सच्चा और न्यायप्रिय समझता था, इसलिए किसी के भी सच बात न बताने पर, उसने उससे पूछा—"दादा, मैं जानता हूँ कि तुम सच्चे और ईमानदार आदमी हो। ईश्वर तुम्हारे ऊपर है, ठीक-ठीक मुझे बताओ कि सुरङ्ग किसने खोदी?"

मगर सेमियोनिच ऐसे खड़ा था जैसे बिचारा कुछ जानता ही न हो, केवल जेलर की ओर देख रहा हो और अक्सियोनोव के वहाँ खड़े होने का उसे भान भी न हो।

अक्सियोनोव के हाथ और होंठ काँप रहे थे। बड़ी देर तक

वह एक शब्द भी न बोल सका; सोच रहा था—"जिसने मेरा जीवन नष्ट किया, उसे मैं क्यों बचाऊँ? मुझे जो दुख दिया है, अब उसका फल तो भोगे! लेकिन अगर मैं कह ही देता हूँ तो· · ·वे तो शायद मारते-मारते इसके प्राण खींच लेंगे· · · · · और हो सकता है मेरा संदेह ही ठीक न हो—उस सौदागर को किसी और ने मारा हो· · · · ·और फिर मुझे इससे क्या लाभ होगा?"

"दादा, तो फिर मुझे सच-सच बतलाओ न कि यह दीवार कौन खोद रहा था?"—जेलर ने दुबारा प्रश्न किया।

अक्सियोनोव ने मकर की ओर देखा और फिर बोला—"सरकार, मैं नहीं बतला सकता! भगवान् की आज्ञा नहीं है। अब आप जो चाहें, सो मेरे साथ करें, मैं आपके हाथ में हूँ!"

जेलर ने बहुत चेष्टा की, किंतु अक्सियोनोव ने नहीं बतलाया। हार कर वह चुप हो रहा और बात आई-गई हो गई।

उसी दिन रात को जब अक्सियोनोव अपने बिस्तर पर लेटा हुआ झपकी लेने ही वाला था कि कोई चुपके से आकर उसके पास बैठ गया। अँधेरे में आँखें फाड़कर उसने देखा—अरे यह तो मकर है।

"तुम क्या चाहते हो?"—अक्सियोनोव ने पूछा—"तुम यहाँ क्यों आये?"

मकर चुप था। अक्सियोनोव उठ बैठा और बोला, "क्या चाहता है? जाता है यहाँ से कि सिपाही को बुलाऊँ!"

मकर अक्ज़ियोनोव के पैरों पर झुक गया और धीमे स्वर में बोला—"आइवान दमीत्रिख, मुझे माफ़ करो!"

"क्षमा कैसी?"—अक्ज़ियोनोव ने पूछा।

"मैंने ही उस सौदागर की हत्या की थी और छुरा तुम्हारे थैले में छिपा दिया था! मेरा इरादा तो तुम्हे भी मार डालने का था; लेकिन तब तक कुछ आहट हुई थी और मैं तुम्हरे थैले मे जल्दी से छुरा रख, खिड़की से कूद कर भाग गया था।"

अक्ज़ियोनोव चुप था। उसके पास कुछ कहने को नहीं था।

मकर बिस्तरे से उतर कर ज़मीन पर लेट गया।

"मुझे माफ करो आइवान!"—वह गिड़गिड़ाने लगा,—"ईश्वर के लिए मुझे माफ कर दो! मै कल ही कह दूँगा कि उस सौदागर का हत्यारा मैं हूँ और तुम मुक्त हो जाओगे। कल ही घर चले जा सकते हो।"

"हाँ, कहना बहुत आसान है अब"—अक्ज़ियोनोव ने उत्तर दिया—"लेकिन तुम्हारे ही कारण मैं छब्बीस बरस से नरक भोग रहा हूँ......अब मै जाऊँ भी तो कहाँ?......मेरी पत्नी मर चुकी है......बच्चे मुझे भूल गये हैं......अब मुझे कहीं नहीं जाना है......।"

मकर ज़मीन से उठा नहीं; पर वहीं अपना सिर पटकने लगा—"आइवान दमीत्रिख, माफ करो!"—वह चीख पड़ा, जब मुझ पर कोड़े पड़े थे, तब भी मुझे इतना दर्द नहीं हुआ था, जितना कि अब तुम्हें इस दुर्दशा में देखकर हो रहा है......

फिर भी तुमने मुझ पर दया की, मेरा नाम नहीं लिया······ ईश्वर के लिए मुझे माफ करो, मैं बड़ा कम्बख़्त हूँ, पापी हूँ !"—, और वह फूट-फूट कर रोने लगा।

उसे रोते देखकर अक्ज़ियोनोव भी रोने लगा—"ईश्वर तुम्हें क्षमा करेगा"—उसने रोते-रोते कहा—"मैं क्षमा करनेवाला कौन होता हूँ? हो सकता है मैं तुमसे भी बुरा हूँ!"—और यह शब्द कहने के बाद उसका हृदय हलका हो गया। घर जाने की आकांक्षा मिट गई। जेल से जाने को अब उसका जी नहीं करता। अब तो वह केवल अपनी मौत की घड़ियाँ गिनता था। फिर भी मकर सेमियोनिच ने अपना अपराध प्रकट कर स्वीकार कर लिया।

कारावास से मुक्ति की आज्ञा लेकर जिस समय जेलर अक्ज़ियोनोव की कोठरी में पहुँचा, उसने देखा कि अक्ज़ियोनोव तो उसके आने से पहले ही जीवन से भी मुक्त हो चुका है।

अफ़सरों की दावत

साल्टीकोव (शत्रद्रिन)

दो अफ़सर थे, बिलकुल बेवक़ूफ़। उनकी खोपड़ियों में अक़्ल नाम को भी नहीं थी।

एक दिन उन्हें ऐसा लगा कि हम किसी जादू के उड़न-खटोले पर बैठकर निर्जन द्वीप में आ गये।

उन लोगों का समस्त जीवन एक सरकारी मुहाफ़िज़खाने में व्यतीत हुआ था। वहां उनका जन्म हुआ था, वहीं पालन-पोषण और वहीं वे बूढ़े हुए थे और इसी कारण अपने दफ़्तर से बाहर दुनिया की कोई भी बात वे नहीं जानते थे। वे केवल यही कहना जानते थे—"जी सरकार, मैं आपका अदना नौकर हूँ।"

लेकिन वह दफ़्तर टूट गया और इन अफ़सरों की कोई ज़रूरत नहीं रह गई। इसलिए इन्हें हमेशा के लिए छुट्टी दे दी गई।

नौकरी छूट जाने पर दोनों अफ़सर सेंटपीटर्सबर्ग की पोदिया-चेस्काया गली में जाकर अलग-अलग मकान लेकर रहने लगे। अपनी-अपनी पेन्शन पाते थे और अपना-अपना खाना अलग बनवाते थे।

निर्जन द्वीप में घूमते-घूमते उन्हें मालूम हुआ कि वे एक ही चादर ओढे लेटे हैं। पहले तो उनकी कुछ समझ में नहीं

आया कि मामला क्या है, और वे अनजाने ही बातें करने लगे :—

"जी सरकार ! रात मैंने एक अजीब सपना देखा"—उनमें से एक अफ़सर ने कहा—"मुझे ऐसा लगा जैसे मैं किसी सुनसान टापू में आ गया।"—अपनी बात पूरी करते न करते वह उछल कर खड़ा हो गया। दूसरा अफ़सर भी उछल पड़ा—

"हे ईश्वर, यह क्या मामला है ? हम लोग हैं कहाँ ?" दोनों आश्चर्य में भर कर चीख़ पड़े !

यह निश्चय करने के लिए कि वे स्वप्न नहीं देख रहे हैं, उन्होंने एक दूसरे को हाथों से टटोला, और फिर उन्हें यह विश्वास हो गया कि हम अवश्य ही किसी वीरान टापू में पड़े हैं, हमारे सामने महासागर लहरा रहा है, हमारे पीछे कुछ थोड़ी-सी ज़मीन है, फिर उसके पीछे महासागर फैला हुआ है।

वे फिर चिल्लाने लगे—दफ़्तर छूटने के बाद आज पहली बार।

उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा और देखा कि हम केवल अपनी सोने की कमीज़ें ही पहने हुए हैं और हमारे गले में तमग़े लटके हुए हैं।

उनमें से एक अफ़सर बोला—"अब तक तो हमें 'काफ़ी' मिल जानी चाहिए थी।" फिर उसे ध्यान आ गया कि अरे मैं तो यहाँ वीरान टापू में पड़ा हुआ हूँ। और बस यह ध्यान आते ही वह रोने लगा—"हम अब क्या करें ? हाय ! अगर हम रिपोर्ट

भी लिखे, तो भेजें किसके पास ? उससे फ़ायदा ही क्या होगा ?"

"जी सरकार, जो होगा, सो आप जानते ही हैं"—दूसरे अफ़सर ने उत्तर दिया—"इससे तो अच्छा यही है कि आप पूरब की तरफ़ जायें और मैं पश्चिम को। शाम तक घूम-घामकर हम यहीं लौट कर फिर मिल जायेंगे। हो सकता है कि तब तक हम लोगों को कुछ मिल जाय !"

लेकिन अब सवाल था यह मालूम करने का कि पूरब किधर है और पश्चिम किधर है। उन दोनों को याद आया कि एक बार उनके बड़े साहब ने उनसे कहा था "अगर तुम्हें पूरब मालूम करना हो, तो तुम अपना मुँह उत्तर की तरफ करके खड़े हो जाओ, तब पूरब तुम्हारी दाहिनी तरफ़ होगा।" लेकिन जब वे उत्तर ढूंढ़ने लगे, तो कभी अपने दायें देखते, कभी बायें; पर चारों तरफ़ घूम जाने पर भी उन्हें उत्तर कहीं नहीं मिला। रिकार्डों के दफ़्तर में सारी ज़िंदगी काट देने पर भी वे पूरब-पश्चिम नहीं ढूंढ़ सके।

"जी सरकार, सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि आप अपने दाहिने हाथ की तरफ़ चल दें और मैं अपने बायें हाथ की तरफ़—" उनमें से उस अफ़सर ने कहा जो पहले 'स्कूल आफ़ रिज़र्व्ज़' में हैंड रायटिङ्ग सिखाता था और इसी लिए कुछ थोड़ा-सा होशियार भी था।

बस बात तय हो गई।

एक अफसर सीधे हाथ को गया। रास्ते में उसे बहुत से पेड़ मिले, जिनमे सब तरह के फल लगे थे। उसने सेब के पेड़ से एक सेब तोड़ना चाहा पर वह पेड़ इतना ऊँचा था कि वहाँ तक उसका हाथ नहीं पहुँच सकता था और चढ़ने से ही काम चलता। इसलिए उसने पेड़ पर चढ़ने की कोशिश की; पर चढ़ नहीं सका और अपनी कमीज़ फाड़ ली। इसके बाद वह वहाँ से चल दिया। आगे चलकर उसे एक तालाब मिला, जिसमें बहुत मछलियाँ थी। उसने सोचा—"काश कि यह सबकी सब मछलियाँ यहाँ से किसी तरह पोदियाचेस्काया गली मे पहुँच जातीं!"—उसके मुँह मे पानी भर आया।

और आगे चलकर उसे जंगल मिला, जिसमें बहुत-से तीतर, खरगोश और बटेरें थीं।

"हे ईश्वर! यहाँ तो खाने के लिए बहुत-सा सामान है!"—वह ख़ुशी के मारे चिल्ला पड़ा। अब उसे भूख भी बहुत ज़ोर से लग रही थी।

लेकिन उसे लौटकर अपनी जगह पर पहुँचना ही था। वह ख़ाली हाथ ही लौट पड़ा। जब वहाँ पहुँचा, तब देखा कि दूसरा अफसर पहले ही पहुँच चुका है और बैठा-बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

"जी सरकार, कहिए आप कैसे रहे? कुछ मिला आपको?"

"कुछ भी नहीं; सिर्फ़ यही 'मास्को गज़ट' की एक कापी।"

दोनों अफ़सर फिर सो गये; लेकिन उनके ख़ाली पेटों में चूहे कूद रहे थे, इसलिए उन्हें चैन नहीं पड़ रहा था। दूसरे यह भी ध्यान उन्हें रह-रह कर सता रहा था और सोने नहीं देता था कि घर पर न जाने कौन उनकी पेंशन के पैसे से मौज उड़ा रहा होगा और जङ्गल के वे तीतर, बटेर, ख़रगोश, हरियल कैसे मज़ेदार होंगे।

"जी सरकार, कभी किसी ने यह भी सोचा है कि आदमी का खाना अपनी असली शक्ल में आसमान में उड़ता फिरता है, पानी में तैरता है और पेड़ों पर लगता है?"—पहले अफसर ने कहा।

"मैं ख़ुद मानता हूँ कि कभी किसी ने नहीं सोचा होगा।"—दूसरे अफसर ने कहा— "क्योंकि मैं तो आज तक हमेशा यही समझता था कि जैसा खाना हमें मेज़ पर खाने को मिलता है, वैसे-का-वैसा ही वह दुनिया में कहीं पैदा होता होगा!"

"जी सरकार, तो इसका यह मतलब हुआ कि अगर हमें हरियल खाना हो, तो पहले हम उसे पकड़ें, मारें, फिर उसके पर नोचें, और तब उसे भूनें; लेकिन यह सब होगा कैसे?"

"हाँ, यही तो मैं भी सोचता हूँ कि यह सब होगा कैसे?"—दूसरे अफ़सर ने बात दोहराकर कहा।

वे चुप हो गये और करवटें बदल कर लेट रहे, लेकिन भूख सोने नहीं देती थी। उनकी आँखों के सामने तीतर, ख़रगोश, बटेर, हरियल, झुंड की झुंड बत्तखें, मुर्ग़ाबी और मछलियाँ—

भुनी भुनाई—अचारो के साथ तश्तरियों में सजी महक रही थीं।

"जी सरकार, मैं सोचता हूँ कि अब मै अपने जूते ही निगल जाऊँ," पहले अफ़सर ने भूख से व्याकुल होकर कहा।

दूसरे अफसर ने उत्तर दिया—"ख्याल तो बुरा नही है; लेकिन खाने मे बुरे तो दस्ताने भी नहीं रहेगें; हाँ, अगर ये ज़रा कुछ मुलायम और होते, तब तो भला क्या कहने थे!"

दोनो अफसर एक-दूसरे को टकटकी लगाकर देखने लगे। उनकी आँखों में जैसे शैतान नाच रहा था। दोनो ही अपनी-अपनी दाँती पीस रहे थे। छातियाँ फूल रही थीं। भुजायें फड़कने लगी थी।

धीरे-धीरे वे एक दूसरे के ऊपर चढ बैठे और पागल-से होकर परस्पर सङ्घर्ष करने लगे। चिल्ल-पुकार मच गई। उनका कम्बल उछलकर एक तरफ़ जा पड़ा। जो अफ़सर स्कूल मे मास्टर रहा था, उसने दूसरे अफसर का तमग़ा गले से काटा, उसके खून बहने लगा। तब दोनो के दोनो होश मे आ गये।

"हे भगवान्!"—वे दोनों एक साथ चिल्ला पड़े—"हम एक दूसरे को निगल जाना तो नही चाहते थे? लेकिन यह सब कैसे हो गया? हम पर कौन-सा भूत सवार है?"

"जी सरकार, जो भी हो। लेकिन अब हम लोगों को अपना जी बहलाना चाहिए, नही तो खून हो जायगा खून!" पहले अफ़सर ने कहा।

"अच्छा, तो पहले आप कुछ कहिए ?"—दूसरे अफसर ने कहा।

"जी सरकार, क्या आप बतला सकते हैं कि क्यों सूरज पहले निकलता है, और फिर डूबता है ? यह क्यों नहीं होता कि वह पहले डूबे, फिर निकले ?"

"आप भी अजीब बात करते हैं जनाब ! पहले सोकर उठते हैं, फिर दफ़्तर जाकर काम करते हैं। और रात को सोने के लिए आप लेट जाते हैं।"

"जी सरकार; लेकिन इसका उलटा क्यों नहीं मानते आप—यानी पहले आप सोते हैं, सपने देखते हैं, फिर सोकर उठते हैं ?"

"हाँ, अच्छा, ठीक है; लेकिन जब मैं अफसर था, तब मैं हमेशा यही सोचा करता था !—अब सवेरा हुआ, अब दोपहर हुई, अब शाम हुई, और खाने का वक्त हो गया और अब खा चुके, चलो सोयें जाकर।"

'खाने' शब्द सुनकर उन दोनों को खाने की याद आ गई और वे उदास हो गये। थोड़ी देर तक उनकी बातचीत बन्द रही।

"जी सरकार, एक डाक्टर ने एक बार मुझसे कहा था, कि आदमी बहुत दिनों तक अपने ही रस पर ज़िन्दा रह सकता है"—पहले अफसर ने फिर बात शुरू की।

"इसका क्या मतलब ?"

"जी सरकार, बिलकुल सीधी-सी बात है। देखिए आदमी अपने रसों से दूसरे रस पैदा करता है, और फिर वे रस और रस

पैदा करते हैं। इसी तरह होता रहता है, यहाँ तक कि सब रस ख़त्म हो जाते हैं।"

"तब क्या होता है?"

"फिर खाना पड़ता है।"

"तब, सब बेकार!"

इस तरह जिस प्रसंग पर भी वे बातचीत करते, वह घूम-फिर कर खाने की बात पर ही आ जाता और इससे उनकी भूख बराबर बढ़ती गई। इसलिए उन्होंने फिर बातचीत बन्द कर दी और 'मास्को गज़ट' उठाकर पढ़ने लगे :—

मेयर ने दावत दी।

"नगर के मेयर ने सौ आदमियों को दावत दी। दावत बड़े ठाट और शान की थी। बड़ी-बड़ी दूर से लोग उसमें आये थे और बड़े-बड़े क़ीमती उपहार लाये थे। शेक्सना की सुनहरी 'स्टर्जियन'[1] और काकेशस के जङ्गल की रुपहरी 'फीज़ैंट[2]' के साथ-साथ स्ट्रॉबैरीज़[3] भी थीं—हमारे यहाँ जाड़ों में ये चीज़ें मुश्किल से मिलती हैं, लेकिन मेयर साहब ने······"

"उफ़!······जनाब······बकवास बन्द कीजिए······इस अख़बार में क्या और कोई बात पढ़ने के लिए नहीं है?"—दूसरे

१—एक तरह की बढ़िया मछली।

२—एक पक्षी, जिसका गोश्त बहुत स्वादिष्ट समझा जाता है।

३—एक प्रकार का फल।

अफ़सर ने चीख़कर कहा और उसके हाथ से अख़बार छीनकर ख़ुद कुछ और पढ़ने लगा :—

"हमें अपने संवाददाता-द्वारा विदित हुआ है कि कल ऊपा नदी में एक स्टर्जियन पकड़ी गई है और पकड़नेवाले हैं ज़िले के भूतपूर्व पुलिस दारोग़ा साहब। वहाँ के बूढ़े-से-बूढ़े लोगों का कहना है कि उनकी याद में कभी इतनी बड़ी स्टर्जियन ऊपा नदी में नहीं देखी गई। स्थानीय क्लब में इस उपलक्ष में दावत हुई। मछली पकाकर मेहमानों को सिरके के अचारों के साथ खिलाई गई। इसके सिवाय और भी कई तरह की बढिया तरकारियाँ और मुरब्बे थे······"

"जी सरकार, मैं एक बात कहूँ, आपको भी पढ़ना नहीं आता। अख़बार में क्या पढ़ना चाहिए, क्या नहीं पढना चाहिए, सो आप नहीं जानते"—पहले अफसर ने उसके हाथ से 'गज़ट' छीन कर कहा और फिर स्वयं पढ़ने लगा।

"वियात्का के एक बहुत पुराने निवासी ने मछली का एक बहुत बढ़िया मसाला तैयार किया है। एक ज़िन्दा 'लोटा वल्गैरीज़'[१] को लकड़ी से इतना पीटा जाय कि ग़ुस्से के मारे उसका जिगर फूलने लगे······" दोनों अफसरों के मुँह लटक गये। जिधर भी उनकी नज़र पड़ती, उधर खाने की बात ही दिखाई देती। इसके सिवाय अगर वे ख़ुद सोचने लग जाते, तो भी खाने की ही बात

१—एक और प्रकार की मछली का रूसी नाम।

सोचते। बढ़िया-बढ़िया खानों का ध्यान कर-करके उनके मुँह की लार टपक-टपक पड़ती और उनकी भूख बढ़ती ही जाती।

सहसा दूसरे अफ़सर को, जो मास्टर रहा था, कुछ दूर की सूझी।

"मार लिया मैदान!"—वह ख़ुशी से उछल कर बोला—"जनाब, अगर एक 'मूज़्हीक'[१] मिल जाय, तो फिर क्या कहने हैं, सब काम हो जाय!"

"जी सरकार—मूज़्हीक, कैसा मूज़्हीक?"

"अजी जनाब, यही मामूली मूज़्हीक तो, जैसे सब मूज़्हीक होते हैं, उन्हीं की तरह। वह हमारा नाश्ता तैयार कर देगा, हमारे लिए तीतर और मछली पकड़ देगा।"

"जी सरकार, हूँ, मूज़्हीक! लेकिन अगर यहाँ कोई मूज़्हीक न मिला, तो?"

"क्यों, यहाँ मूज़्हीक क्यों नहीं मिलेगा? दुनिया में आपको हर जगह मूज़्हीक मिल जायगा। बस हमें उसकी तलाश करनी पड़ेगी। काम से जी चुरा कर कोई न कोई मूज़्हीक यहाँ ज़रूर छिपा पड़ा होगा।"

इस नई सूझ से दोनों अफ़सर ख़ुश होकर उछल पड़े और तुरन्त ही मूज़्हीक को ढूँढ़ने चल दिये।

बहुत देर तक वे टापू में घूमते रहे; लेकिन उन्हें मूज़्हीक नहीं

१—किसान के लिए रूसी शब्द।

मिला। फिर घूमते-घामते उन्हें अचानक भेड़ के गोश्त और बाजरे की रोटी की महक मालूम पड़ी। जिधर से महक आ रही थी, सीधे उसी तरफ़ वे बढ़े चले गये। थोड़ी दूर चलकर उन्होने देखा कि एक पेड़ के नीचे हाथो के ऊपर सिर रखे एक मूज़्हीक पड़ा सो रहा है। यह साफ़ ज़ाहिर था कि काम से बचने के लिए वह इस निर्जन टापू में भाग आया है। इसलिए उनके क्रोध का कोई ठिकाना नही रहा।

"क्यो बे कामचोर! यहाँ पड़ा-पड़ा सो रहा है?"—वे दोनो मूज़्हीक पर चिल्ला पड़े "तुझे मालूम नहीं कि तेरे दो अफसर लोग भूखे हैं? और तुझे कुछ भी फिक्र नहीं! चल उठ कर काम कर!"

मूज़्हीक उठ बैठा। अपने सामने उसने दो कड़े अफ़सरो को जो खड़े देखा, तो उसकी जान-सी निकल गई। फिर उसने साहस बटोरा और वहाँ से भागने का इरादा किया; लेकिन अफसर लोग उसे कसकर पकड़े हुए थे। फिर क्या करता बेचारा, काम करने लगा।

सबसे पहले वह पेड़ पर चढ़ा और अफ़सरों के लिए बहुत से सेब तोड़े। एक सड़ा-सा सेब अपने लिए भी रख लिया।

इसके बाद उसने ज़मीन में से कुछ आलू खोद निकाले; दो लकड़ियाँ रगड़ कर आग जला ली। मूँज का एक जाल बुनकर उसमें तीतर पकड़े। यह सब कर लेने के बाद उसने खाना पकाना शुरू किया। और इतनी तरह के खाने बनाये कि अफ़सरो ने सोचा—'मूज़्हीक को भी कुछ क्यो न दे दें?'

मूज़्हीक की मेहनत देखकर दोनों अफसर मन ही मन बहुत ख़ुश हो रहे थे। 'दो दिन से भूख के मारे हमारी जान निकली जा रही थी'—यह अब वे बिलकुल भूल गये। अब इस वक़्त तो उनके दिल में यही बात थी कि—'अफ़सर होना भी कैसा अच्छा है! अफ़सर को तो कभी कोई कष्ट हो ही नहीं सकता!'

"हुज़ूर का जी ख़ुश हो गया?"—आलसी मूज़्हीक ने पूछा।

"हाँ, हम तेरी मेहनत से ख़ुश हैं"—अफ़सरों ने जवाब दिया।

"तब हुज़ूर हुक्म हो तो मैं तनिक देर आराम कर लूँ?"

"अच्छा जा, ज़रा देर आराम कर ले; लेकिन पहले एक रस्सी बटकर दे जा!"—अफसरों ने मूज़्हीक को आज्ञा दी।

मूज़्हीक ने सरपत[1] इकट्ठा किया, उसे पानी में भिगोया और फिर कूट कर मूंज तैयार की। शाम तक एक बड़ी मज़बूत रस्सी बटकर तैयार हो गई।

उस रस्सी से अफसरों ने मूज़्हीक को पेड़ से कसकर बाँध दिया, जिससे कि वह उन्हें छोड़कर भाग न जाय। फिर वे दोनों सो गये।

इसी तरह दिन पर दिन बीतने लगे। मूज़्हीक खाना बनाने में बहुत कुशल हो गया। और वे दोनों अफसर खा-खाकर ख़ूब मोटे पड़ गये। उन्हें बड़ी ख़ुशी इस बात की थी कि यहाँ हमको कुछ ख़र्च करना नहीं पड़ता और मुफ़्त में ही ख़ूब खाने को

१—वह पौदा जिसकी डन्डियों को कूटकर मूंज बनाई जाती है।

मिल रहा है; और हमारी पेन्शन सेंटपीटर्सबर्ग में जमा हो रही है।

"जी सरकार, आपकी क्या राय है"—पहले अफसर ने एक दिन दूसरे अफसर से नाश्ता करने के बाद पूछा,—"क्या 'टॉवर ऑफ़ बेबिल' की कहानी सच्ची है? क्या वह रूपक नहीं है?"

"नहीं जनाब, मैं समझता हूँ कि वह बिलकुल सच है, वरना दुनिया में इतनी तरह की भाषायें होने के और क्या कारण हो सकते हैं?"

"तब तो 'फ़्लड' (प्रलय) भी ज़रूर आया होगा?"

"और नहीं तो क्या जनाब, वह झूठ ही है!—वरना ऐंटीडिलूवियन[१] जानवर कहाँ से आते? और फिर 'मास्को गजट' भी तो कहता है कि......"

अब 'मास्को गज़ट' की तलाश हुई। उसे ढूंढ कर वे एक पेड़ की छाया में बैठ कर शुरू से पढ़ने लगे। उसमें उन्होंने मास्को, टूला, पेन्ज़ा, और रियाज़ाँ में होनेवाली दावतों का वृत्तान्त पढ़ा, किन्तु आश्चर्य था कि इस बार स्वादिष्ट भोजनों का नाम सुन-सुन कर उनके मुँह में पानी नहीं भरा।

कुछ कहा नहीं जा सकता कि और कितने दिनों तक उन लोगों का जीवन इसी तरह व्यतीत होता। लेकिन, फिर

१—फ़्लड से पहले के जीव-जन्तु।

उनका जी ऊबने लगा। उन्हें रह-रह कर अपने सेंटपीटर्सबर्गवाले रसोइयों की भी याद आने लगी, और कभी-कभी वे चुपके-चुपके आँसू भी बहा लेते थे।

"जी सरकार, न जाने पोदियाचेस्काया गली में आजकल कैसा लगता होगा"— पहले अफ़सर ने दूसरे अफसर से कहा।

"ओह जनाब, आप मुझे उसकी याद न दिलाइए। मैं तो उसकी याद में घुला जा रहा हूँ"—दूसरे अफसर ने उत्तर दिया।

"जी सरकार, यहाँ तो बड़े मज़े हैं। कोई भी तकलीफ हमें यहां नहीं है, फिर भी बछड़ा अपनी मा गाय के लिए रँभाता ही है। और हाय! हमारी वे ख़ूबसूरत वर्दियाँ......!"

"हाँ जनाब, चौथे दर्जे की वर्दी पाना कोई मज़ाक थोड़े ही है! उसकी सुनहरी पट्टी देखकर ही लोगों की आँखें चौंधिया जाती हैं और उनके मुँह में पानी भर आता है!"

अब वे दोनों मूझीक से कहने लगे—"जैसे भी हो, तुम्हें हमें पोदियाचेस्काया गली में पहुँचाना ही पड़ेगा!"—बड़े आश्चर्य की बात है कि मूझीक यह भी जानता था कि पोदियाचेस्काया गली है कहाँ। वहाँ उसने एक बार 'बियर' और मधु-हाला पी थी। अफ़सरों को यह सुनकर बड़ी ख़ुशी हुई। वे कहने लगे— "हम पोदियाचेस्काया गली के ही अफ़सर हैं!"

"और हुज़ूर, मैं उन लोगों में था—आपको क्या याद है?—जो छत से लटकते हुए रस्सियों के एक मचान पर बैठ कर

दीवारें पोता करते थे। मैं उन लोगों में से हूँ जो छतों पर चींटों की तरह रेंगते हैं। मैं वही हूँ।"—मूज़्हीक ने कहा।

बड़ी देर तक मूज़्हीक सोचता रहा—"अपने अफसरों को मैं कैसे ख़ुश करूँ। मुझ ग़रीब पर ये अफ़सर कितने मेहरबान रहे हैं। मेरे काम को इन्होंने बुरा नहीं कहा।"

फिर उसने लट्ठों की एक नाव बनाई और उस पर अफसरों को बैठालकर महासागर के पार पोदियाच्येस्काया गली की ओर ले चला।

"अच्छा, देख वे कुत्ते! हमें डुबो मत देना"—दोनों अफसरों ने मूज़्हीक को झिड़ककर कहा, क्योंकि नाव लहरों के थपेड़ों से डगमगाने लगी थी।

"हुज़ूर, डरिए मत। हम मूज़्हीक लोगों को इसकी आदत है"—मूज़्हीक ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

समुद्र-यात्रा के लिए पूरी-पूरी तैयारी करके चला था वह। अफ़सरों के बैठने के लिए उसने नाव पर पयाल बिछाकर गुद-गुदा कर दिया था। इस प्रकार मूज़्हीक नाव लेकर समुद्र में खेने लगा।

यह बतलाना बड़ा कठिन है कि दोनों अफसरों को कितना डर लग रहा था; कैसे वे रह-रह कर ग़रीब मूज्हीक को झिड़क-झिड़क देते थे; उनका जी ज्वार आते ही कैसा मिचलाने लगता था, आदि। मूज़्हीक किसी न किसी तरह नाव खेए ही चला गया। अफ़सरों के खाने के लिए उसने हरिङ्ग मछलियाँ पकड़ीं।

अन्त में उन्हे नीवा मैया[१] दिखाई पड़ी। इसके बाद शीघ्र ही नाव कैथरीन कैनाल (नहर) में जा पहुँची और फिर ओह! कितनी ख़ुशी की बात है कि वे अपनी पोदियाचेस्कोया गली मे जा पहुँचे।

रसोइयो ने अपने मालिक-अफ़सरो को ख़ूब मोटा, ताज़ा और ख़ुश देखा, तो उन्हें भी बहुत ख़ुशी हुई।

फिर दोनो अफ़सरो ने कॉफी पी, क्रीमरोल्स खाई, वर्दी पहन कर घोड़ागाड़ी में बैठे और पेन्शन के दफ़्तर चले गये। वहाँ उन्हें पेन्शन में कितना मिला, यह एक दूसरी बात है जिसे बतलाना बड़ा मुश्किल है। किन्तु यह अवश्य है कि वे बेचारे ग़रीब मूज़्हीक को भूले नहीं। उन्होने उसे एक गिलास व्हिस्की और पाँच कोपेक दिये।

अब तो मूज़्हीक बहुत ख़ुश था!

•

समाप्त

१—नीवा रूस मे एक नदी है जो गङ्गा की तरह ही पवित्र मानी जाती है; उसे रूसी 'मा' कहते हैं। जैसे हम लोग 'गगामैया' कहते हैं।

आगामी २०० पुस्तकें

नीचे लिखी २०० पुस्तकें शीघ्र ही छप रही हैं। ये हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों-द्वारा लिखाई गई हैं। आप भी इनमें से अपनी रुचि की पुस्तकें अभी से चुन रखिए और अपने चुनाव से हमें सूचित भी करने की कृपा कीजिए।

विचार-धारा

मानव-संबंधी

(१) जीवन का आनन्द
(२) ज्ञान और कर्म
(३) मेरे अन्त समय के विचार
(४) मनुष्य के अधिकार
(५) प्राच्य और पाश्चात्य समस्या
(६) मानव-धर्म
(७) जातियों का विकास
(८) विश्व-प्रहेलिका

समाज-संबंधी

(१) संस्कृति और सभ्यता का विकास
(२) विवाह-प्रथा, प्राचीन और आधुनिक
(३) सामाजिक आन्दोलन
(४) धर्म का इतिहास
(५) नारी
(६) दरिद्र का क्रन्दन

राजनीति-संबंधी

(१) समाजवाद
(२) चीन का स्वातन्त्र्य-प्रयत्न
(३) राष्ट्रों का संघर्ष
(४) स्वाधीनता और आधुनिक युग
(५) युवक का स्वप्न
(६) योरपीय महायुद्ध
(७) मूल्य, दर और लाभ

विश्व-उपन्यास-माला

(१) तावीज
(२) आना केरेनिना
(३) मिलितोना
(४) डा० जेकिल और मि० हाइड
(५) पंपियायी के अन्तिम दिन
(६) अमर नगरी
(७) काला फूल
(८) चार सवार
(९) रेबेका
(१०) डेविड कूपर फील्ड
(११) जेन्डा का कैदी
(१२) बेनहूर
(१३) कोवेडिस
(१४) रोमियो जूलियट
(१५) दो नगरों की कहानी
(१६) टेस
(१७) रहस्यमयी

आधुनिक उपन्यास

(१) चुनारगढ
(२) विषादिनी

(३) कालरात्रि
(४) मुक्ति
(५) यादगार
(६) द्वादशिकी
(७) दाना-पानी
(८) विप्लव
(९) जलती निशानी
(१०) ग्रहचक्र
(११) कजरी
(१२) जयमाला
(१३) उत्कण्ठिता
(१४) लहर
(१५) विचित्रा (नाटक)
(१६) जयंती
(१७) आलमगीर
(१८) कर्णार्जुन

रहस्य-रोमांच

(१) ताज का रहस्य
(२) शैतान
(३) धन का मोह
(४) कोशलगढ़ का किसान
(५) पहाड़ी फूल
(६) अन्तिम परिणाम
(७) अद्भुत जाल
(८) मृत्यु का व्यापारी
(९) यौवनशिखा
(१०) विद्रोही
(११) छिपा खजाना
(१२) गर्विता
(१३) चेतावनी
(१४) देश के लिए
(१५) दोस्त
(१६) चांदी की कुञ्जी
(१७) आदर्श युवक
(१८) हुल्लड़
(१९) शैतान डाक्टर
(२०) प्रतिशोध
(२१) अन्याय का अन्त
(२२) प्रोफेसर चौधरी
(२३) वज्राघात
(२४) समय का फेर
(२५) डाक्टर कोठारी का लोभ
(२६) चीन का जादू
(२७) नाला चश्मा
(२८) हार
(२९) अफरीदी डाकू
(३०) खतरे की राह
(३१) मकड़ी का जाला
(३२) अदृश्य आदमी
(३३) साहस का पहाड़
(३४) अंधेरखाता
(३५) कङ्कन का चोर
(३६) अपूर्व सुन्दरी
(३७) लौह लेखनी
(३८) गुप-चुप
(३९) लाल लिफाफा
(४०) कल की डाक

कहानी-संग्रह

('क' विभाग)—विदेशी भाषाओं की चुनी हुई कहानियां—५ भाग

('ख' विभाग)—लेखकों की अपनी चुनी हुई कहानियां—५ भाग

('ग' विभाग)—विभिन्न विषयों पर चुनी हुई कहानियां—५ भाग

('घ' विभाग)—भारतीय भाषाओं की चुनी हुई कहानियां—६ भाग

विज्ञान

(१) स्वास्थ्य और रोग
(२) जानवरों की दुनिया
(३) आकाश की कथा
(४) समुद्र की कथा
(५) खाद्य-विज्ञान
(६) मनुष्य की उत्पत्ति
(७) प्राकृतिक चिकित्सा
(८) विज्ञान का व्यावहारिक रूप
(९) प्रकृति की विचित्रतायें
(१०) वायु पर विजय
(११) विज्ञान के चमत्कार
(१२) विचित्र जगत्
(१३) आधुनिक आविष्कार

हिन्दी-साहित्य

अमर साहित्य

(१) वैष्णवपदावली
(२) मीरा के पद
(३) नीति-संग्रह
(४) हिन्दी का सूफी कविता
(५) प्रेममार्गी रसखान और घनानन्द
(६) सन्तों की वाणी
(७) सूरदास
(८) तुलसीदास
(९) कबीरदास
(१०) बिहारी
(११) पद्माकर
(१२) श्री भारतेन्दु

साहित्य-विवेचन-निबंध-संग्रह इत्यादि

(१) हिन्दी-साहित्य में नूतन प्रवृत्तियां
(२) हिन्दी कविता में नारी
(३) हिन्दी के उपन्यास
(४) हिन्दी में हास्य-रस
(५) हिन्दी के पत्र और पत्रकार?
(६) हिन्दी का वीर-काव्य
(७) नवीन कविता, किधर
(८) ब्रजभाषा की देन
(९) हिन्दी के निर्माता (द्वितीय भाग)
(१०) बालकृष्ण भट्ट
(११) बालमुकुन्द गुप्त
(१२) महावीरप्रसाद द्विवेदी
(१३) बाबू श्यामसुन्दरदास

धर्म

(१) गीता (शाङ्करभाष्य)
(२) ,, (रामानुजभाष्य)
(३) ,, (मधुसूदनी टीका)
(४) ,, (शङ्करानन्दी टीका)
(५) ,, (केशव काश्मीरी की टीका)
(६) योगवाशिष्ठ (१२ मुख्य आख्यान)

(७) सरल उपनिषद् ईश, केन, कठ, मुंडक, प्रश्न, ऐतरेय, तैतिरीय, श्वेताश्वतर आदि) २ भाग

(८) पुराण (समस्त पुराणों के चुने हुए शिक्षाप्रद और मनोमोहक कथानक)

(९) महाभारत के निम्नांकित अंश
क–(विदुरनीति)
ख–(सनक सुजातीय)
ग–(नारायणीय उपाख्यान)
घ–(श्रीकृष्ण के समस्त व्याख्यान)
ङ–(वन, शान्ति और अनुशासन-पर्व के आख्यान)

(१०) पातञ्जल योगदर्शन (व्यास भाष्य)

(११) तंत्र सर्वस्व

(१२) पौराणिक संतों के चरित्र

(१३) उत्तर-भारत के मध्यकालीन संत

(१४) दक्षिण-भारत के संत

(१५) आधुनिक संतों की जीवनी (श्री अरविन्द, रमण महर्षि, विवेकानन्द, उड़िया बाबा आदि)

(१६) पतिव्रताओं और सतियों के चरित्र

ऐतिहासिक विचित्र कथा

(१) भारत का प्राचीन गौरव

(२) प्राचीन मिस्र का रहस्य

(३) प्राचीन ग्रीक की सभ्यता

(४) मृत्युलोक की झांकी

(५) अमेरिका का स्वाधीनता-युद्ध

(६) फ्रांस की राजक्रांति

(७) रोमनसाम्राज्य का पतन

(८) क्रांति की विभीषिका

(९) रोम के महापुरुष

(१०) इत्सिंग का भारत-भ्रमण

(११) ध्रुव प्रदेश की खोज में

(१२) प्राचीन तिब्बत

(१३) सहारा की विचित्र बातें

(१४) मरहठों का उदय और अस्त

(१५) सिक्खों का उत्थान और पतन

(१६) भारत के पूर्वी उपनिवेश

(१७) मुगलसाम्राज्य में भ्रमण

(१८) मुगलों का दरबार

(१९) लखनऊ की शाहजादियां

(२०) विदेशी यात्रियों का भारत-वर्णन

(२१) नरभक्षकों के देश में—

(२२) पशुओं, मानवों और देवों में—

जीवन-चरित्र

(१) नेपोलियन बोनापार्ट

(२) लेनिन

(३) भारतीय राजनीति के स्तम्भ (१)

(४) तुर्की का पिता कमाल

(५) मेजिनी—इटली का वीर

(६) सन-यात-सेन—चीन का नायक

(७) एब्राहिम लिंकन—अमेरिका का नेता